# कल्याण



वर-वेशमें भगवान् शिव



मकरवाहिनी श्रीगंगाजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



🕉 नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्ये नमोऽस्तु ते॥ नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्ये ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, मार्च २०१६ ई० पूर्ण संख्या १०७२

### -भागीरथी-स्तुति

**मुररिपुचरणाम्भोजपीयूषसारं** दुःखस्वाब्धेस्तरित्रं सुरदनुजनुतं स्वर्गसोपानमार्गम्। सर्वांहोहारि वारि प्रवरगुणगणं भासि या संवहन्ती

साक्षाद्धर्मद्रवौघं

तस्यै भागीरथि श्रीमित मुदितमना देवि कुर्वे नमस्ते॥

जो जल साक्षात् धर्मकी राशि है, भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई सुधाका सार है, दु:खरूपी समुद्रसे पार होनेके लिये जहाज है तथा स्वर्गलोकमें जानेके लिये सीढ़ी है, जिसे देवता और दानव भी प्रणाम करते हैं, जो समस्त पापोंका संहार करनेवाला, उत्तम गुणसमूहसे युक्त और

शोभासम्पन्न है, श्रीमती भागीरथी देवि! ऐसे जलको आप धारण करती हैं। मैं प्रसन्नचित्त होकर आपको नमस्कार करता हँ।

| कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७२,   | श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, मार्च २०१६ ई०  |  |
|--|--|--|
| विषय-सूची  |  |  |
| विषय पृष्ठ-संख्या  | विषय पृष्ठ-संख्या  |  |
| १- भागीरथी-स्तुति  | १३- गंगा, कर्णवास तथा काका हाथरसी (श्रीकैलाश पंकजजी श्रीवास्तव)  |  |
| १२- वेदोंके अनुसार ब्रह्माण्डका दिव्य अप्—गंगा (श्रीरामजी शास्त्री) २२   | २५- मनन करने योग्य५०   |  |
| चित्र-   | -सूची  |  |
| २ - मकरवाहिनी श्रीगंगाजी   | <b></b>  |  |
| (एकवर्षीय शुल्क) जय जय विश्वरूप हरि जय   |  |  |
| आदिसम्पादक — <b>नित्यलीलालीन</b><br>सम्पादक — <b>राधेश्याम खेमका,</b> सह<br>केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के | द्वेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका<br>भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार<br>सम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़<br>लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित |  |
| website: www.gitapress.org e-mail: k   | alyan@gitapress.org 🕝 (0551) 2334721   |  |

संख्या ३ ] कल्याण कहते हैं कि बवण्डर-(चक्रवात)-के ठीक बीचमें सोचता हुआ यहाँकी वस्तुओंमें अपने योग्य आश्रय एक ऐसा स्थान भी रहता है, जहाँ कोई हलचल नहीं। ढुँढने चलता है, पर इसे भी पहले या पीछे मिलती वहाँ वायुका तनिक भी प्रकोप नहीं रहता, प्रत्युत इतनी है भयानक प्रतिकूलता ही। आजतक किसीके लिये शान्ति रहती है कि यदि किसी छोटे शिशुको वहाँ भी सभी बातें सदा और सर्वथा अनुकूल बन गयी हों, यह न कभी हुआ है न होगा। इसीलिये अनुकूलता सुलाया जा सके तो वह सुखकी नींद सोता रहेगा। वायुका झकझोर उसे छूतक नहीं सकता। ठीक इसी ढुँढनेवाले मनको प्रतिकूलता प्राप्त होती है और उस प्रकार इस संसारके कोलाहलके मध्यमें प्रभु विराजित समय वह हाहाकार कर उठता है। बुद्धि सारा हैं तथा जहाँ वे हैं, वहाँ न तो जगत्की हलचल है और विवेक लगाकर निर्णय देती है कि बस, इस काममें न त्रितापकी विषमयी ज्वाला ही, वहाँ सर्वदा और लगो, इस बार सफलता अवश्य मिलेगी। इस बार सर्वथा सुख–शान्ति भरी रहती है। जो कोई भी वहाँ तुम्हारे सारे अभावोंकी पूर्ति ही जायगी, किंतु परिणाम

प्रकार इस ससारक कालाहलक मध्यम प्रमु विराजित हैं तथा जहाँ वे हैं, वहाँ न तो जगत्की हलचल है और न त्रितापकी विषमयी ज्वाला ही, वहाँ सर्वदा और सर्वथा सुख-शान्ति भरी रहती है। जो कोई भी वहाँ पहुँच जाता है, उसके प्राण शीतल हो जाते हैं। जगत्के उलट-फेर उसपर अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकते।

हम अपने जीवनपर विचार कर देखें तो पता चलेगा कि उसमें न जाने कितने चढ़ाव-उतार हुए हैं, कितनी बार हम हँसे हैं और कितनी बार रोये हैं। संसारके प्रवाहमें बहते हुए हम सदा चंचल बने रहते हैं। अबतक कोई भी ऐसा विश्रामस्थल हमें नहीं

मिला, जहाँ हम थोडी देरके लिये भी आरामसे टिक

कर, शान्तिसे स्थिर होकर, थकान मिटा सकें। थककर

हम जिसका सहारा लेने चलते हैं, देखते हैं वह भी

हमारी ही भाँति हलचलमें है, सतत् उसी प्रवाहमें

बह रहा है। इस प्रकार संसारके थपेडोंकी चोट

खाते-खाते हम सबकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं,

मन उद्विग्न हो उठा है और बुद्धि कुण्ठित हो चली

है। इन्द्रियाँ यहाँकी वस्तुओंमें सुख ढूँढ़ने जाती हैं,

पर सुखके बदले आगे या पीछे इन्हें प्राप्त होती है

सदा विषैली ज्वाला ही। ये बुरी तरह झुलस जाती

हैं। मन अनुकूलता ढूँढ़ने जाता है, अमुक परिस्थिति

ऐसी बन जाय, अमुक व्यक्ति ऐसा बन जाय, यों

यह होता है कि हम असफल हो जाते हैं अथवा कहीं सफल भी हुए, हमारा कोई-सा एक अभाव पूर्ण भी हो गया तो उसके साथ ही नये दसों-बीसों अभाव खडे हो जाते हैं। अब इन नये अभावोंकी पूर्ति कैसे हो, इस विषयमें बुद्धि कोई भी निर्णय नहीं कर पाती। इस प्रकार हमारा जीवन इस संसारके बवण्डरमें यहाँसे वहाँ उड़ता हुआ भ्रमण कर रहा है, सदा अशान्त बना हुआ है। किंतु यदि हम बवण्डरसे खिसककर, इसीके केन्द्रमें विराजित प्रभुसे जा लगें, उनकी छत्रछायामें विश्राम करनेकी ठान लें और साधनात्मक प्रयत्नमें लग जायँ तो निश्चय ही उनका सान्निध्य पा जायँ और हमारी दशा सर्वथा सुधर जाय। उस समय यहाँकी हलचल चाहे कितनी ही भयानक, कितनी ही प्रबल क्यों न हो, हम उससे कभी विचलित नहीं हो सकते। हम प्रभुकी गोदमें चक्रवातके मध्य केन्द्रमें स्थित शिशुकी भाँति सुखसे,

चैनसे जीवन बिता सकते हैं। संसारकी हलचल हमें

अभीतक प्रभावित करती है, जबतक हम संसारके

मूलमध्यमें स्थित प्रभुकी शरण नहीं ग्रहण कर लेते।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय-भगवान् शिवका वर-वेष शिव-पार्वतीके विवाहकी कथा सृष्टिकी सबसे सोनेका कलश लिये चल रही थीं। भेरियोंकी गड़गड़ाहट मंगलमयी कथा है, जिसमें दम्पतीरूपमें सृजन, अन्नपूर्णारूपमें और शंखोंके गम्भीर नादसे तीनों लोक गूँज उठे। देवता पालन और कुमारद्वारा तारकासुरके संहारका सन्निवेश लोग शिवगणोंके पीछे-पीछे उत्साहपूर्वक चल रहे थे।

है। यह समस्त सुष्टि शिव-शिवारूप ही है। भगवान् शंकर ही संसारके सारे पुरुष हैं और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण स्त्रियाँ, अत: सभी स्त्री-पुरुष उन्हींकी विभूतियाँ हैं। शिव-शिवा अनादि हैं, नित्य हैं, शाश्वत हैं; वे नित्य दम्पती हैं, परंतु लीला-विलासके रूपमें मर्त्य

प्राणियोंको दाम्पत्य-प्रेमकी शिक्षा देनेके लिये और देवताओंको तारकासूरके आतंकसे त्राण दिलानेके लिये उनकी यह विवाह-लीला होती है। इसमें देवाधिदेव

महादेव वर बनते हैं और भगवती गिरिराजनन्दिनी जगज्जननी जगदम्बा वधू। शैलराज हिमालय और उनकी धर्मपत्नी मेनाको कन्यादानका और ब्रह्मा-विष्णु आदि देवताओं, सप्तर्षियों, ऋषि-मुनियों, नन्दी आदि

शिवगणों, यक्ष-गन्धर्वों, भूत-प्रेतों, डाकिनी-शाकिनियों, मातृकाओं, देवांगनाओं आदिको बाराती बननेका सौभाग्य

प्राप्त होता है। उस समय ब्रह्माजीने विधिपूर्वक मण्डप-स्थापन, नान्दीश्राद्ध आदिके साथ मांगलिक कृत्य शिवजीसे सम्पन्न करवाये। शिवगणोंने नाना प्रकारसे भगवान्

शिवका शृंगार किया। तदनन्तर ब्राह्मणोंको आगे करके महादेवने

प्रसन्नतापूर्वक कैलाससे प्रस्थान किया। भगवान् शम्भुने नन्दी आदि गणोंको अपने साथ हिमाचलपुरी चलनेकी आज्ञा देते हुए कहा—'तुम लोग थोड़े-से गणोंको यहाँ

रखकर शेष सभी मेरे साथ हिमवान्के नगर चलो।' भगवान् भृतभावनका आदेश मिलते ही नन्दी तथा वीरभद्र आदि गणराज असंख्य कोटि गणों तथा भूतोंको

साथ लेकर चले। उसी समय चण्डीदेवी भी रुद्रदेवकी

बहन बनकर खूब उत्सव मनाती हुई वहाँ आ पहुँचीं।

सम्पूर्ण सिद्धियाँ और लोकपाल आदि भी देवताओं के

साथ थे। देवमण्डलीके मध्यभागमें गरुडासीन भगवान् विष्णु चल रहे थे। उनपर चँवर डुलाये जा रहे थे तथा उनके ऊपर सुन्दर छत्र तना था। अपने पार्षदोंसे घिरे हुए वे अद्भृत शोभा पा रहे थे। ब्रह्माजी मूर्तिमान् वेद-

शास्त्र, सनकादिक ऋषियों एवं प्रजापतियोंके साथ भगवान्

रहे थे।

शिवकी सेवामें तत्पर थे। देवराज इन्द्र भी नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो ऐरावत हाथीपर आरूढ होकर अपनी सेनाके साथ चलते हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। उस समय बारातके साथ यात्रा करते हुए बहुत-से

ऋषि भी अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। सबके मनमें शिवजीका विवाह देखनेकी प्रबल उत्कण्ठा थी। इस प्रकार अनेक प्रकारसे आनन्द मनाती हुई यह विचित्र बारात हिमवान्के नगरके समीप पहुँची।

वृषभारूढ भगवान् शिवका दर्शनकर हिमवान् धन्य हो गये। करोडों कामदेवोंकी छिबको मिलन करनेवाले महेश्वरकी शोभा अद्भुत थी। उनके दिव्य अंगोंके प्रकाशसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं। उनका श्रीअंग नूतन रेशमी वस्त्रसे सुशोभित था। उनके मस्तकका

दिव्य मुकुट नाना रत्नोंसे जड़ा हुआ था, जिससे आँखोंको चौंधिया देनेवाला प्रकाश निकल रहा था। आभूषण बने हुए सर्प उनकी अंगकान्तिको द्विगुणित कर गिरिराजने सबको सादर प्रणाम किया। तदनन्तर

3 Himdylistry Prisoped Server thttos: Holsey Server at the server of horizontal with the control of the control

[भाग ९०

भगवान् शिवकी आज्ञासे बारातकी अगवानी करते हुए वे अपने नगरकी ओर चले। हिमवान्के पीछे महादेवजी अपने बारातियोंके साथ शीघ्रतापूर्वक चलने लगे। सर्वप्रथम भगवान् विष्णु हिमवान्के द्वारपर पधारे।

भगवान शिवका वर-वेष संख्या ३ ] \* \* कामदेवोंको लिज्जित कर रहा था। उन्हें देखकर मैनाके मालतीकी माला पहने हुए थे। सुन्दर रत्नमय मुकुट नेत्र चकोर बन गये। उन्होंने प्रमुदित होकर नारदजीसे धारण करनेसे उनका मुखमण्डल उज्ज्वल प्रभासे उद्भासित पूछा—'नारद! क्या ये ही मेरी शिवाके पति हैं?' हो रहा था। कण्ठमें हार आदि सुन्दर आभरण शोभा नारदजी बोले—'देवि! ये शिवाके पति नहीं, ये तो दे रहे थे। सुन्दर कड़े और बाजूबन्द उनकी भुजाओंको भगवान् श्रीहरि हैं। ये भगवान् शिवके सम्पूर्ण कर्मोंके विभूषित कर रहे थे। अग्निके समान निर्मल एवं अनुपम अधिकारी तथा उनके प्रिय हैं। शिवाके पति तो इनसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, मनोहर, विचित्र एवं बहुमूल्य युगल बढ़कर हैं। उनकी शोभाका वर्णन ही नहीं हो सकता।' वस्त्रसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। चन्दन, अगर, इसी प्रकार एक-एक करके सभी देवता आते, मैना कस्तूरी तथा मनोहर कुंकुमके अंगरागसे उनके अंग उनका परिचय पूछतीं और नारदजी उनको महेश्वर विभूषित थे। उन्होंने हाथमें रत्नमय दर्पण ले रखा था शिवका सेवक बतलाते। इससे मैनाके मनमें हर्षके और उनके दोनों नेत्र कज्जलसे सुशोभित थे। उन्होंने साथ-साथ अहंकार भी उत्पन्न हो गया। वे अपने तथा अपनी प्रभासे सबको आच्छादित कर लिया था तथा वे पार्वतीके सौभाग्यकी सराहना करने लगीं। अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे। वे अत्यन्त तरुण, परम उस समय मैनाका अहंकार चूर्ण करनेके उद्देश्यसे सुन्दर और आभरण-भूषित अंगोंसे सुशोभित होनेसे अद्भृत वेषमें परमेश्वर शिव पधारे। वे स्वयं तो अद्भृत कामिनियोंको अत्यन्त कमनीय प्रतीत होते थे। उनमें थे ही, उनके अनुचर और भी अद्भुत थे। कुछके मुख व्यग्रताका अभाव था। उनका मुखारविन्द कोटि चन्द्रमाओंसे ही नहीं थे तो कुछ बहुत मुखवाले थे। सभी विचित्र भी अधिक आह्लाददायक था। उनके श्रीअंगोंकी छवि वेश-भूषा धारण किये थे। उनके बीचमें भगवान् शंकर कोटि कामदेवोंसे भी अधिक मनोहारिणी थी। वे अपने वृषभपर सवार थे। उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक सभी अंगोंसे परम सुन्दर थे। ऐसे सुन्दर रूपवाले उत्कृष्ट मुखपर तीन-तीन नेत्र थे। मस्तकपर जटा-जूट, गलेमें देवता भगवान् शिवको जामाताके रूपमें अपने सामने सर्पोंकी माला, दस हाथ, हाथमें पिनाक और त्रिशुल, खड़ा देख मेनाकी सारा शोक और सारी चिन्ता दूर हो आँखें भयानक—विचित्र वेष था शिवजीका! अपने गयी। वे परमानन्दिसन्धुमें निमग्न हो गयीं और अपने दामादका यह रूप देखकर मैनाके हाथसे आरतीकी भाग्यकी, गिरिजाकी, गिरिराज हिमवानुकी और उनके थाली छूट गयी। भयसे व्याकुल होकर वे पृथ्वीपर गिर समस्त कुलकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं। उन्होंने पड़ीं। उन्होंने पार्वतीसे कहा—'मैं तुम्हें लेकर पहाड़से अपने आपको कृतार्थ माना और वे बारम्बार हर्षका गिर पड़ँगी, आगमें जल जाऊँगी या समुद्रमें कूद पड़ँगी, अनुभव करने लगीं। सती मेनाका मुख प्रसन्नतासे खिल पर जीते-जी मैं इस बावले वरसे तुम्हारा विवाह न उठा था। वे अपने दामादकी शोभाका सानन्द अवलोकन करूँगी।' मैनाका अहंकार-मर्दनकर भगवान् शिवने करती हुई उनकी आरती उतारने लगीं। उनपर कृपा की। उन्होंने करोडों कामदेवोंको लज्जित भगवान् भवानीपतिका यह दिव्य वर-वेष भक्तोंके करनेवाला दिव्य स्वरूप धारण किया। उनकी अंगकान्ति लिय सदैव ध्येय है, यह उनका परम मांगलिक रूप मनोहर चम्पाके समान थी। उनके एक मुख और तीन समस्त मंगलोंका प्रदाता है। जो पुरुष भगवान् सदाशिवके नेत्र थे। प्रसन्न मुखारविन्दपर मन्द मुसकानकी छटा छा इस सुन्दर रूपका नित्य पवित्र हो ध्यान करता है, वह रही थी। वे रत्न और सुवर्ण आदिसे विभूषित थे। गलेमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

### (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

लोकमें शिक्षाका महान् महत्त्व है; उसके धारण और उपासनापर निगाह रखनी पड़ेगी। ऐसा जिसका नियम है

आचरणका भी महान् महत्त्व है। अत: किसी भी प्रकारकी कि सूर्यके रहते ही सन्ध्या करनी है तो सूर्य भी उसके लिये शिक्षाकी बात कही जाय, यदि उसके सुननेके साथ ही ठहर जाते हैं। तो यह बात देखनेमें कितनी आश्चर्यकी

उसे धारण कर लिया जाय तो बहुत ही शीघ्र काम हो

जाय, परंतु यदि सुन करके काममें न लाया जाय तो चाहे

रोज सुना करे, फिर उसका विशेष असर नहीं होता। वही

स्थिति अपने लोगोंकी हो रही है। थोड़ी देर या ज्यादा

देर शिक्षाकी बात सुनी जाती है, पर उसे काममें बहुत कम लाया जाता है। एक तो इस दृष्टिसे अपने काममें

लाये कि यह बात शास्त्र कहते हैं, इसे महात्मा लोग कहते हैं। तो अपने लोगोंको यही करना चाहिये, तिलभर

भी उसके आगे-पीछे नहीं जाना चाहिये। चाहे जो कुछ भी हो, मामूली बातके लिये भी चाहे प्राण जाय, अपनेको

वही बात करनी चाहिये जो सुनी और महात्माओंने बतलायी। यदि इतनी दृढ़ धारणा कर लें तो बहुत जल्दी काम हो जाय और यदि आपने आलस्यके कारण, शरीरके

आरामके कारण या किसी भी कारणसे अवहेलना कर दी तो वही काम एक तरहसे मुश्किल हो जाय। कल हमने महाभारतकी कथा पढ़ी, पढ़ करके मनमें

यह आश्चर्य हुआ कि देखो जरत्कारु जो ऋषि हैं, उनकी स्त्रीने सायंकालमें उन्हें उठा दिया, इसलिये कि उनके सन्ध्याका समय हो गया। वह दोपहरसे तीसरे पहरतक सो गये थे। अब वह स्त्री जो है, उसने उन्हें उठा दिया तो वे

अपनी स्त्रीपर क्रोध करके बोले—तुमने मुझे क्यों उठाया ? उसने कहा—स्वामिन्! सूर्यभगवान् अस्ताचलको जा रहे हैं यानी सूर्य अब छिपनेवाले हैं, आपका यह नियम है कि

सूर्यके रहते ही सन्ध्या कर लेना। मैं यदि इस समय आपको न उठाती तो आपके धर्ममें बाधा आती, इसलिये मैंने आपको

उठा दिया। मैंने सोचा कि सूर्य अस्ताचलको जा रहे हैं तो

उठा दूँ। तो उन्होंने कहा—मैं सोता रहूँ और सूर्य अस्ताचल चले जायँ, यह उनमें सामर्थ्य नहीं है। यह हो ही नहीं सकता। मुझे एकदम निश्चय है। मेरे हृदयमें यह निश्चय

बात है। सूर्य अभी अस्त नहीं हुए हैं। वे दीख रहे हैं। भगवान् सृष्टिकी रचना करनेवाले हैं, वे चाहे जैसा कर सकते हैं। भगवान्के बिना भी सन्ध्या करनेवाले व्यक्तिका प्रभाव और पतिव्रता स्त्रीका प्रभाव आपने देखा। किंतु

रहा है। क्या मालूम सब मर गये या चले गये; परंतु उस समय ऐसी-ऐसी आश्चर्यजनक बातें होती थीं। आपको विश्वास करना चाहिये कि ये बातें जो शास्त्रोंमें लिखी हैं, वे ठीक ही हैं, कोई गलत नहीं है; क्योंकि उस समयके

> लोग नियमके बड़े पक्के थे। चाहे जो हो, अपने नियमका पालन करते थे और अपनेमें यह दोष आ गया है कि थोड़ी

भी आपत्ति यदि आ गयी तो अपने सुभीतेके वास्ते नियमको छोडकर अलग जा खडे होते हैं।

डॉक्टरकी दवाइयोंमें जो मदिरा मिली रहती है, इनके सेवनमें समझो कि कितना भारी महापाप है, किसी प्रकारसे

भी यदि एक बार भी मदिरा पी ले तो बड़ा भारी दोष होता

मालूम देती है। आजकल तो ऐसा दीखता ही नहीं है कि

सूर्यभगवान् भी ठहर सकें। किंतु महाभारतमें उसने यही बात कही है। इसी प्रकारसे पतिव्रता स्त्रीकी बात सुनी गयी है।

मेरे पित ही मर जायँ तो सूर्य उदय ही क्यों हो ? सूर्यकी चाल बन्द हो गयी और सूर्य ठहर गये। जयद्रथके लिये

सूर्यभगवान्ने ऐसी आश्चर्यजनक बात दिखलायी कि जब

जयद्रथ मारा गया तो हो-हल्ला मचा कि यह अन्याय हो

गया, सूर्यके अस्त होनेपर जयद्रथ मारा गया। भगवान्

वहाँ खड़े थे, बोले—सूर्यभगवान् अभी मौजूद हैं, प्रत्यक्ष

आजकल कोई ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति नहीं दिखायी दे

एक पतिव्रता स्त्रीने कहा कि सूर्य उदय होनेसे यदि

है, इसका शास्त्र विरोध करता है। यदि आप इसका प्रायश्चित्त करना चाहें तो गायत्रीमन्त्रका, जिनका यज्ञोपवीत हो गया,

िभाग ९०

उनको एक हजार जप रोज तीन साल या एक सालतक है कि मैं जबतक उठकर सन्ध्या नहीं कर लुँगा, सूर्य नहीं करनेका विधान है। यदि रोज पीये तो सोचो वह कितने

वर्ष करे ? तो डॉक्टरी दवाई कोई मुँहसे खा लेते हैं, कोई छिपेंगे। इतना दृढ़ विश्वास है। तो इसका भाव यह है कि यदि आदमी सुर्यकी उपासना करे तो सुर्यको भी उस आदमीकी इंजेक्शनके द्वारा खाते हैं, थोडी भी आपत्ति आ जाय तो

| संख्या ३ ] नियमोंके पात  | ननसे कल्याण ९   |
|--|---|
| \$ | *************************************                     |
| लोग उसे बर्दाश्त नहीं करते झट च्युत हो जाते हैं। किंतु वे                    | समझे तो अपने कहनेका कोई मूल्य नहीं है। अपनी नियतमें       |
| लोग नियमके इतने पक्के थे कि प्राण भले ही चला जाय,                            | कोई दोष नहीं होना चाहिये। शब्द तो कह दिया किंतु           |
| परंतु अपने धर्मका त्याग नहीं करते थे। तभी तो धर्म उनको                       | यदि वह कपटयुक्त है तो वह मिथ्या है। इस प्रकार सत्यके      |
| प्रत्यक्ष फल दिखाता था।  | प्रभावको भी दिखाया है और सत्यके त्यागका प्रभाव भी         |
| राजा युधिष्ठिरपर भारी-से-भारी आपत्ति आयी, किंतु                              | दिखाया है। इन सब बातोंको याद करके अपने नियम-              |
| उन्होंने अपने धर्मका त्याग नहीं किया। उसका यह प्रभाव                         | पालनमें बहुत ही दृढ़ रहना चाहिये।                         |
| था कि जिस देशमें राजा युधिष्ठिर वास करते, उस देशमें                          | अपने लोगोंने कितनी बार सत्संगका नियम बनाया।               |
| अकाल नहीं पड़ता, महामारी नहीं आती, दैवी प्रकोप नहीं                          | भाईजी वगैरहने बनाया, कई दिनतक उसे काममें लाया             |
| होते। धनकी वृद्धि होती, धान्यकी वृद्धि होती, सत्यकी                          | फिर छोड़ दिया, फिर बनाया फिर छोड़ दिया। तो उससे           |
| वृद्धि होती—इन चीजोंकी वृद्धि होती। चूँिक वे सत्य बोलते                      | क्या लाभ हुआ ? लाभ तो तभी हो सकता है, जब आप               |
| थे, इस वास्ते सत्यकी वृद्धि होती। जो आदमी धर्मका                             | छोटेसे नियमपर भी दृढ़ रहें—कायम रहें। एक तरफ तो           |
| पालन करता है, उसका इतना प्रभाव पड़ता है कि उसके                              | प्राणका पालन करें और एक तरफ नियमोंका पालन करें।           |
| सामने दूसरे लोग भी धर्मका पालन करने लग जाते हैं।                             | यह कैसे ? कल ही हमने कथा पढ़ी कि शृंगी ऋषिने राजा         |
| यहाँतक दिखलाया गया है कि युधिष्ठिरके शरीरसे खून                              | परीक्षित्को शाप दे दिया तो उसके पिता महर्षि शमीकने        |
| निकलकर यदि जमीनमें गिर जाय तो १२ वर्षतक अकाल                                 | उसे उपालम्भ दिया, कहा—वत्स! वह राजा है, धर्मात्मा है,     |
| पड़ जाय। राजा नहुषने उनसे वार्तालाप किया तो नहुषके                           | सब प्रकारसे रक्षा करता है, अत: राजाको इस प्रकार शाप       |
| पापका नाश हो गया। बातचीत करनेसे, प्रश्नोत्तर करनेसे,                         | नहीं देना चाहिये। तुमने यह बहुत ही गलती की है, तो पुत्रने |
| दर्शन करनेसे पापका नाश होता है। तो यह कितने महत्त्वकी                        | जोर देते हुए कहा कि नहीं मैंने जो कुछ किया है, वह         |
| बात है। किंतु वे धर्मपर डटे रहे, इसलिये मृत्यु भी उन्हें                     | ठीक किया है। मेरी बात एकदम सोलहों आने होगी। मैंने         |
| नहीं मार सकी। वे अपने इसी शरीरसे स्वर्ग चले गये।                             | कभी भी—विनोदमें भी झूठ नहीं बोला है। मैं स्वेच्छापूर्वक   |
| उनकी सब जगह गति थी, चाहे स्वर्ग हो चाहे वैकुण्ठ।                             | और स्वाभाविक रूपसे बोला हूँ, उसमें भी कभी मिथ्या          |
| जहाँ इच्छा होती वहीं चले जाते। तो उनमें यह एक                                | नहीं बोलता। मेरा वचन सत्य ही होगा। राजाको अवश्य           |
| अलौकिक शक्ति देखी गयी। सत्यका वे पालन करते थे।                               | मरना ही होगा। फिर पिताने भी उसका समर्थन किया कि           |
| सत्यके प्रभावसे उनके रथका पहिया जमीनसे ऊपर चला                               | ठीक है तू सत्यवादी है, बालकपनेसे ही सत्य बोलता है,        |
| करता, जब युधिष्ठिर रथपर पैर रखते तब जमीनसे रथके                              | मैंने कभी भी तेरी बात मिथ्या नहीं सुनी तो तेरा वचन सत्य   |
| पहिये ऊपर उठ जाते। अपनी आयुभरमें एक ही बार वे                                | होगा। फिर भी यह बात कहता हूँ कि तू अभी बच्चा है, मैं      |
| झूठ बोले। उस झूठका नतीजा यह हुआ कि उसी दिन                                   | तेरा पिता हूँ, पिताका कर्तव्य होता है कि उसके सामने       |
| उनके रथके पहिये जमीनपर गिर गये, जिस दिन उन्होंने                             | लड़के सदैव बच्चे ही हैं। इसलिये अब भी मेरा यही            |
| अश्वत्थामाके मरनेके विषयमें थोड़ा जबान दबा करके                              | कर्तव्य है कि यदि तू गलती करे तो तुमको मैं समझाऊँ कि      |
| कह दिया कि अश्वत्थामा तो मरा किंतु मरा हाथी। तो                              | यह बात तूने गलती की है। मैं राजा परीक्षित्को यही बात      |
| शब्द तो साँच कहा, किंतु गुरु द्रोणाचार्यने सुना नहीं कि                      | कहूँगा कि मेरे मूढ़मति लड़केने जो आपको शाप दे दिया,       |
| हाथी मरा या मेरा बेटा ही मरा है। उन शब्दोंको सुनकर                           | वह शाप तो मिथ्या होगा नहीं, तो तुम इसके बचावका            |
| गुरुने अपने प्राण त्याग दिये। तो ऐसे भी झूठ बोलनेका                          | प्रयत्न करो। तुमने जो कुछ किया, उसके लिये सावधान          |
| पाप युधिष्ठिरको लगा; क्योंकि द्रोणाचार्यने जो समझा,                          | कर दिया है। उसका भेजा हुआ जो शिष्य था, वह भी              |
| वहीं बात सच मानी गयी। युधिष्ठिरकी बात सच नहीं                                | बहुत ही सदाचारी था। उसने राजाकी सभामें जाकर यह            |
| मानी गयी। बात सच नहीं समझायी गयी। आप किसीको                                  | बात ज्यों-की-त्यों जैसे ऋषिने कही थी, राजासे कह दी।       |
| कोई बात कहें और समझायें तो वह जो समझे, वही बात                               | राजाने भी सुनकर यही निश्चय किया, ठीक है मेरा बड़ा         |
| सच मानी जाय, वही ठीक है। यदि वह ठीकसे नहीं                                   | भारी अपराध है। राजाने कहा कि यदि उनके शापसे मैं मर        |

भाग ९० जाऊँगा तो इसकी मुझे चिन्ता नहीं है, परंतु मुझसे जो यह दे देता है तो फिर तू मोटा-ताजा कैसे है? मैं तुमको अपराध हो गया, इसकी मुझे बड़ी भारी चिन्ता है। शाप खानेके लिये भिक्षा देता नहीं! तो बिना खाये तू मोटा-देनेवालेपर दोष नहीं लगाया, अपने ऊपर ही दोष लगाया ताजा कैसे है ? वह बोला—भिक्षा मैं दूसरी बार माँग लाता कि मैंने बड़ी भारी गलती की, जो इस प्रकारसे बैठे हुए हूँ। गुरुजीने कहा—यह शास्त्रके विरुद्ध है। दो बार भिक्षा ऋषिके गलेमें साँप डाल दिया—मरा हुआ साँप डाल नहीं माँगनी चाहिये। भिक्षामें एक बार जो कुछ मिले, दिया। उस धैर्यशाली ऋषिके गलेमें साँप डाल दिया तो भी बस उतना ही ठीक है। दो बार भिक्षा कभी नहीं माँगनी वह वैसा ही बैठा रहा—सॉॅंप जैसे डाल दिया, वैसा ही रहा। चाहिये। वह बोला—ठीक है, अब नहीं माँगूँगा। फिर यह नहीं कि राजापर क्रोध किया। वह साँप कन्धेपर पड़ा भी वह मोटा-ताजा ही रहा, फिर गुरुजीने पूछा-तू सारी ही रहा। ऋषिमें कितना बड़ा धैर्य था। उनके पुत्रने उसके भिक्षा लाकर मुझे दे देता है और मैं तुमको भिक्षा देता बदलेमें शाप दिया। आजकलका पिता कहता कि तूने नहीं हूँ, दूसरी बार तुम लाते नहीं हो तो, तुम ऐसे मोटे-बहुत अच्छा काम किया। उसने जैसी दुष्टता की वैसा ही ताजे क्यों हो ? वह बोला—मैं गायका दुध पी लेता हूँ। तुमने उसे शाप दिया। किंतु शमीक ऋषिने यह बात कही गुरुने कहा-नहीं, गायका दूध नहीं पीना चाहिये। तू दूध कि बेटा! तूने यह बात अनुचित की, तेरा यह करना उचित पी जायगा तो बछड़ा भूखा रह जायगा। वह बोला— नहीं था। राजाके पास ऋषिने यही बात कहलायी कि मेरा ठीक है, नहीं पीऊँगा। फिर भी वह मोटा-ताजा रहा! मृदमित लड़केने बाल-चपलताके कारण जो आपके द्वारा फिर गुरुजीने कहा-तू दूसरी भिक्षा भी नहीं लाता, न अपराध हो गया उसके बदलेमें शाप दे दिया, यह काम गायका दुध ही पीता है फिर भी मोटा-ताजा कैसे है? अनुचित है। इसलिये हर एक बातमें अपनेको शिक्षा लेनी वह बोला-जब बछड़ा दूध पीता है तो वह झाग करता चाहिये। आजकल मैं महाभारत पढ़ता हूँ तो मुझे ऐसी है, उस झागको पी लेता हूँ। बछड़े तो बहुत हैं न! उससे शिक्षाकी बात मिलती है। यों तो महाभारत मैंने पढ़ा-सुना पेट भर जाता है। गुरुजीने कहा—बछड़े जो दूध पीते हैं, है, पर जब वह सामने आ जाता है तो एक नये-नये भावकी वे तेरी खातिर ज्यादा झाग छोड़ देते हैं तो वह झाग भी जागृति होती है और उससे बडी शिक्षा मिलती है कि देखो तुमको नहीं पीना चाहिये। तो वह बोला—ठीक है, नहीं उसमें कैसी दृढ़ता थी—ऐसे ही मनुष्यमें दृढ़ता होनी चाहिये। पीऊँगा, अब वह न तो झाग पीता, न खाता। भूखों अपनेमें तो दृढ़ता नहीं है इसलिये सफलता नहीं मरनेलायक हो गया, जब भूख लग जाती तो आकका मिलती। आदमी डट करके रहे तो उसमें सफलता है। पत्ता खा लेता, आकका पत्ता खानेसे वह अन्धा हो गया, इसलिये अपना जो कर्तव्य है, नियमोंका पालन है, उसे जिससे वह एक दिन कुएँमें गिर गया, गुरुने शिष्योंसे पूछा कि उपमन्यु क्यों नहीं आया है? फिर बोले—ठीक है, सदा काममें लाना चाहिये। किसी प्रकारसे उससे विचलित नहीं होना चाहिये। कोई भी आपत्ति आ जाय, कानूनकी उसकी जंगलमें खोज करूँ, जंगलमें खोजने गये तो वह आपत्ति आ जाय, शरीरकी आपत्ति आ जाय—कानूनकी कुएँके अन्दर मिला। गुरुजीने पूछा—उपमन्यु! कुएँमें कैसे हो या भाईकी हो या सरकारकी हो। यद्यपि सरकारका गिर गये? वह बोला-महाराज! भोजन तो सब एक कानून नहीं मानोगे तो सरकार दण्ड देगी। इसी तरहसे प्रकारसे बन्द हो गया। भूख लगी, आकका पत्ता खा ईश्वरके कानूनकी बात आ जाय तो उसमें भी खूब सतर्क गया, जिससे अन्धा हो गया। गायोंको चराते-चराते कुएँमें रहना चाहिये। छोटी-सी भी बातका यदि आप पालन करें गिर गया। तो गुरुजीने कहा—अश्विनीकुमारका जो स्तोत्र तो उसमें कायम ही रहना चाहिये। है, उसका तू पाठ कर। यह कहकर गुरुजी चले गये। उसने कुएँमें ही अश्विनीकुमारके स्तोत्रका पाठ किया। कल महाभारतमें ये सब बातें पढनेमें आयीं। इससे मनमें यह भाव उठा कि मनुष्यको खूब मजबूती रखनी अश्विनीकुमार आये। आकर उससे बोले कि तू यह अमृत चाहिये। अपने धर्मके ऊपर खुब कायम रहना चाहिये। पी ले। वह बोला—मैं गुरुके दिये बिना यह अमृत कैसे दो-तीन दिन पहले उपमन्युकी बात पढ़ी। तो उसमें गुरुजीने पीऊँ ? फिर अपनेसे अश्विनीकुमारने नेत्र भी दिया, बल Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH I GVE BY Avinash/Sha यह बात कह दी कि उपमन्यु ! तू भिक्षा लोकर सीध मुझे भी दिया। इसके बाद वह गुरुके पास आया। सारी बात

नियमोंके पालनसे कल्याण संख्या ३ ] कही। तब गुरुने कहा कि तू अब अपने घर जा। तुझे ले आओ, फलाने दिन पर्व है, उस दिन वह कुण्डल पहन करके ही पर्व मनाऊँगी।' चौमासेका पर्व था। उसके आनेमें सारे शास्त्रोंका ज्ञान हो जायगा, तेरा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा। तेरा सारा काम सिद्ध हो जायगा। वेदोंका— थोड़ी देर हुई, जिससे वह उन्हें शाप देनेके लिये तैयार हो गयी। बोली कि अगर तू समयपर नहीं पहुँचा होता ब्रह्मका उसे सब ज्ञान हो गया। इस प्रकारसे गुरुने उपदेश दे दिया। सो कोई बात हो तो उसकी दृढ़ताकी ओर ख्याल तो मैं तुझे शाप दे देती। एक प्रकारसे तलवार निकालकर करना चाहिये, जो बात कह दी उसे जरूर करना चाहिये, मारनेके लिये तैयार रही। इस प्रकारसे उसके हुकुमका पालन करना आश्चर्यजनक था। प्राण भी देनेको तैयार कितना भी कष्ट हो। वह काम तो करे ही नहीं जिस रहता। उनमें शक्ति थी, अपने लोगोंमें बिलकुल वह बात बातकी शास्त्रने मनाही कर दी, या अपने माता हैं, पिता हैं, मालिक हैं, बड़े हैं, कोई भी बात अपनेको कह दी, देखनेमें नहीं आती, और चाहते हैं कि फल मिल जाय, हुकुम कर दिया, उसके लिये अपने जीवनमें आपको कभी मुक्ति मिल जाय। यद्यपि नियमका पालन करना बड़ा कठिन न नहीं करना चाहिये, चाहे जो कुछ भी हो जाय। जिस है, फिर भी नियमका पालन अवश्य करना चाहिये। बातकी मनाही कर दी गयी, वह बात वहीं बन्द कर दी आरुणिको धौम्यम्निने आज्ञा दी कि तू जा तो उसके आशीर्वादसे ही उसका कल्याण हो जाय। उसने खेतमें - जंगलके खेतमें जो पानी जा रहा है, उसको पढ़ाया-लिखाया कुछ भी नहीं, यही उसकी परीक्षा ली-रोक। बड़े कष्टसे पहले फावड़ेसे पानी रोकनेकी चेष्टा हुकुम दे दिया। बिना देखे कि यह कहाँतक हुकुमका की, पर वह पानी रुका ही नहीं। तो वह खुद वहाँ पसर पालन कर सकता है। उसपर इतनी कड़ाई की कि हदसे गया-लेट गया। लेटकर पानीको रोक दिया। अधिक। समझो कि उसको आकका पत्ता खाना पडा, रात्रिके वक्त आरुणि नहीं आया तो शिष्योंसे पूछा जिससे वह अन्धा हो गया और कुएँमें गिर गया। फिर कि आरुणि क्यों नहीं आया? तो सबने कहा—उसे मेंड् भी उसे कुएँसे नहीं निकाला। कुएँमें ही पड़ा रहा। तब बाँधनेके लिये भेजा गया था। गुरुजीने कहा कि चलो, भी कोई विचार नहीं आया। उसे जो आज्ञा देते, वह उसकी खबर लें। गुरुजी सब जानते थे, लेकिन वे एक प्रकारसे दूसरे शिष्योंको दिखलानेके लिये कि देखो, वह करता। यह भी नहीं कहा कि अश्विनीकुमार यदि अमृत दें तो तू मत पीना। खानेके लिये पूआ दिया, उसने न तो कैसा नियमका पालन कर रहा है, गुरुजी शिष्योंके साथ पूआ खाया और न अमृत पिया। अन्तमें कार्यकी सिद्धि गये। खेतके निकट पहुँचकर आवाज दी—आरुणि! आरुणि!! ओ आरुणि!!! कहाँ हो, आरुणिने गुरुकी हो ही गयी; क्योंकि वह हुकुम मानता गया। अन्य शिष्योंद्वारा यह सब बात देखी गयी। वे तीन शिष्य थे। तीनोंमें ही आवाज सुनी, बोला—गुरुजी! मैं यहाँ हूँ, पानी रुक नहीं रहा था, लेटकर मैं पानी रोके हुए हूँ। गुरुजी उसकी यही बात थी कि गुरुने जो कहा—इन लोगोंने उसका पालन किया। वे शिष्य आगे जाकर फिर आचार्य बने आवाज सुनकर उसके पास गये, उन्होंने कहा—उठो और अपने भी शिष्य बनाये। उन्होंने इतनी कड़ाई नहीं बेटा आरुणि! गुरुजीके आदेशसे आरुणि उठा और की। कहते कि हमने गुरुकी कडाई देखी है, हमने गुरुकी गुरुजीके चरणोंमें नमस्कारकर बोला—गुरुजी! अँधेरी जितनी कडाई सही है हम उतनी कडाई नहीं करेंगे। इसी रात थी, आपने मेंड बाँधनेके लिये मुझे भेजा था। माटीसे किसी प्रकार मेंड़ बाँध न सका तो खुद पसर गया और तरहसे उस समयमें शाप देना तो गुरुके हाथमें था। इसमें भी देर नहीं होती। इस समयमें जरा भी ऊक-चूक हो पानी रोक दिया। पानीको रोके हुए था और क्या आज्ञा जाय तो उठाकर बेंत मार दो, पर उस समयमें तो वचनका है ? मैं वहाँ फिर जाकर बाँधूँ या और कोई हुकुम है। ही बेंत था। जरा-सा ऊक-चूक हो जाय तो शाप देनेके जब आपने पुकारा तो मैं चला आया। पानी बह रहा लिये तैयार। उत्तंक ऋषि अपने गुरुकी आज्ञा-पालनमें है। गुरुजी बोले—बेटा आरुणि! अब तुम्हारा काम सिद्ध एकदम निपुण रहा, उसे कितना कठिन काम बतलाया हो गया, तू अपने घर जा। गुरुके हुकुमका पालन करनेसे कि गुरुआनीने कहा है—'अमुक राजाकी स्त्रीका कुण्डल सब शास्त्र बिना पढ़े ही उसे आ गये।

गुरुजन पुत्र और शिष्योंके कल्याणार्थ ही उनका ताडन करते हैं, वैसे सर्व अनर्थोंके मूलभूत अधर्म, अन्यायको

मिटानेके लिये ही दुष्ट-निग्रहादि कार्योंमें उनकी प्रवृत्ति

होती है। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदिप कुमाता न

भवति।' (पुत्रके कुपुत्र होनेपर भी माता कुमाता नहीं

होती)-के अनुसार किसी भी जीवका अकल्याण

परमेश्वरको अभीष्ट नहीं होता। संग्राम करते हुए भी भगवतीके हृदयमें अतिदुष्ट दैत्योंपर भी कृपा बनी रहती

है। कर्कशताके साथ तीक्ष्णातितीक्ष्ण शस्त्रास्त्र-प्रयोग

करते समय भी उनके हृदयमें दया ही बनी रहती है

अन्यथा कुपित दृष्टिसे ही वे विश्वके समस्त दैत्योंका

संहार कर सकती थीं, फिर शस्त्रप्रयोगकी क्या आवश्यकता

थी? शस्त्र-प्रयोग तो केवल इसलिये था कि शस्त्रोंसे

पवित्र होकर दुष्ट दैत्य लोग भी सद्गतिको प्राप्त कर

लें। इसी दुष्टिसे परमेश्वरके साथ वैर करनेवालोंको भी

अन्तमें सद्गति ही हुई। इस दृष्टिसे परमेश्वर एवं उनके

भक्तोंके हृदयमें कभी भी प्राणियोंके अकल्याणकी

भावना नहीं होती। वे कभी भी प्राणिमात्रके प्रति अपने

अकृत्रिम घनिष्ठ सम्बन्धको नहीं भूलते। जितनी मात्रामें अनर्थकारिणी उपर्युक्त विस्मृति मिटती है, उतनी ही

मात्रामें विश्वशान्ति होती है। जैसे प्रत्यक्षानुभूत स्वाप्निक

प्रपंच जागते ही उपेक्षणीय सिद्ध हो जाता है, वैसे ही

सर्वत्र परमेश्वर-भावनासे कोलाहलपूर्ण संघर्ष भी मिथ्या

िभाग ९०

आध्यात्मिकताकी अपेक्षा

( ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज )

संसारके सभी प्राणी परमेश्वरके ही पुत्र हैं, सभी आँखमें काँटा चुभाया जाय तो उसकी प्रसन्नताकी आशा

उसीके प्रिय हैं, इस दृष्टिसे सभीका परस्पर भ्रातृभाव है। व्यर्थ ही होती है, वैसे ही परमात्माकी पूजा करते हुए

स्थितिमें परस्पर प्रेम, कल्याण-कामना स्वाभाविक ही है। अत्याचार किया जाय तो परमेश्वरकी प्रसन्नताकी आशा

मार-काट, आपसी संहार सिवा मोहके अन्यथा कथमपि करना निरी भूल है। इसी दृष्टिसे अध्यात्मवादी तत्त्वज्ञ

वेदान्त-दृष्टिसे तो सब परमेश्वरके स्वरूप ही हैं। ऐसी

भी यदि उनके अंश जीवोंको सताया जाय, उनपर

अपराधीको दण्ड देते हुए, संग्राममें शत्रुसे लड़ते हुए भी नहीं बन सकता। विचारशील प्राणी तो सम्पूर्ण प्राणियोंमें

उन सबके हितैषी ही रहते हैं। जैसे माता-पिता एवं

परमेश्वर-भावना ही रखते हैं। उनकी दुष्टिमें अपकारीके

प्रति भी अहितबुद्धि नहीं होती। वे किसी भी स्थितिमें

सर्वाधिष्ठान भगवान्को नहीं भूलते। 'गीता' ने बतलाया

है—'समं सर्वेषु भृतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।

विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥' अर्थात्

जो सबमें परमेश्वरको और परमेश्वरमें सर्वको देखता है,

उससे भगवान कभी परोक्ष नहीं होते और वह कभी परमेश्वरसे परोक्ष नहीं होता। जो सर्वत्र विराजमान, सम परमेश्वरको

देखता है, वह आत्महनकी गतिसे बचकर परागतिको प्राप्त

होता है। जिसकी बुद्धि समतामें स्थित हो जाती है, वह

संसार-कालमें भी संसारके प्रपंचसे असंस्पृष्ट रहता है।

जिस तरह अपने पैरमें काँटा चुभनेपर कष्ट होता

है, उसी तरह दूसरोंको भी कष्ट होगा, ऐसा समझ

लेनेपर प्राणिहिंसामें कथमपि प्राणियोंकी प्रवृत्ति नहीं हो

सकती। जैसे अपने प्रति अत्याचार, अन्याय असह्य होता

है, वैसे ही दूसरोंको भी असह्य होगा, ऐसा समझनेपर

दुर्जनताका अन्त अवश्य होता है, अन्यथा जैसे एक

व्यक्ति या समाज दूसरोंके प्रति अन्याय करता है, वैसे

ही दूसरा व्यक्ति या समाज उसके प्रति करेगा। ऐसी

स्थितिमें अन्यायका अन्त कभी भी नहीं हो सकेगा, कोई

भी प्राणी सुखकी नींद नहीं सो सकेगा। सब लोग

परस्परकी आशंकाओंसे त्रस्त रहते हैं, इसलिये अहिंसा,

सत्य, न्याय आदिका सर्वत्र समानरूपसे आदर किया

जाता है। यह सबके कामकी वस्तु है। विशेषत:

ईश्वरवादी तो अनेक रूपोंमें प्रकट परमेश्वरके किसी भी

रूपकी अवहेलनामें परमेश्वरका ही अपमान समझता है।

जैसे किसीके कण्ठमें माला पहनायी जाय और उसके

सिद्ध हो जाता है। अत: इस समय परमावश्यकता इस बातकी है कि भौतिकवादकी प्रधानताको छोडकर

अध्यात्मवादका विस्तार किया जाय।

'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत' संख्या ३ ] ६ १ 'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत' ( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) यहाँपर पहले एक सन्त थे, मंगलनाथजी महाराज। इस प्रकार अपनेको हम भगवान्का बना लें तो क्या बड़े अच्छे महात्मा रहे। प्रारब्धवश उनपर कुछ मुकदमे होगा? भगवद्भावका विकास हमारे अन्दर होगा। ये हो गये थे। उनको मुकदमोंके दृष्टान्त याद आते थे। एक कसौटी है। जबतक हमारे अन्दर जगत् बसता है, तबतक दिन वे बोले कि भैया! एक बात याद रखो—अगर हमारे जीवनका रूप कुछ और रहेगा और जब हमारे मालिककी चीजको अपनी मान बैठोगे तो तुम्हारी चीज तो अन्दर भगवान् आकर बस जायँगे, तब हमारे जीवनका रहेगी नहीं, वह तुमसे छिन जायगी, तुमपर बेईमानीका रंग-रूप पलट जायगा, चाहे ढाँचा यही रहे। रंग-रूप मुकदमा चलेगा और तुम्हें जेल हो जायगी। चीज भी पलटनेपर क्या होगा? ये अनुभूति होगी उसको। फिर गयी, इज्जत भी गयी और जेलकी सजा भी हो गयी। ये सारी जितनी भी गड़बड़झालेकी चीजें हैं, ये निकल ठीक यही बात, सारी चीज भगवान्की, सारा जायँगी। वैसी अवस्थामें हम कह सकेंगे कि हमारे सामान भगवानुका और हम कह दें ये तो हमारा, तो जीवनमें भगवान् आ गये, इसके पहले हम भगवान्से मरते समय तो अपने साथ चितापर लेकर नहीं जाओगे, प्रार्थना करें कि भगवान् हमारे हो जायँ। एक तुकबन्दी मालिककी चीज रहेगी मालिककी, हमने उसको मेरा सुनाता हूँ आपको इसी भावकी। ये भगवान्से कहता है— कहा, मेरा माना, ये बेईमानी की। इस चोरीका—इस रहते मुझको 'मेरा' कहनेवाले। जबतक अपराधका हमें दण्ड मिलेगा। चीज हमारी रहेगी नहीं, तुम हो दूर खड़े हँसते हो सदा निराले॥ मालिककी चीज मालिककी रहेगी। मालिककी चीज रखते मोह-ग्रस्त मुझको ये डाले घेरा। जबतक मालिकको हम बराबर देते रहें ईमानदारीके साथ, तुम कहते सकुचाते खुलकर मुझको 'मेरा'॥ मालिककी चीजपर मालिकका आधिपत्य मानें, अपना जगके प्राणि-पदार्थींको मैं कहता 'मेरा'। जबतक मेरापन तो केवल सेवाके लिये रहे। कोई बोले-तुम तबतक तुमको कभी नहीं कह पाता खुलकर 'मेरा'॥ कौन? तो बोले—सेवक। ये मेरा और मेरी चीजका जो तुमको ही मैं 'मेरा' नहीं बना हूँ पाता। जबतक भाव है; वह सारा सेवावृत्तिमें आकर केन्द्रित हो जाय— 'मेरे-मेरे'-का दावानल तबतक सदा जलाता॥ 'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।' दया करो, इस मोह-पाशसे मुझको तुम्हीं छुड़ाओ। मैं सेवक सचराचर और सभी मेरे स्वामी भगवानुका शब्दोंमें मुझको कह 'मेरा' अपनाओ॥ प्यारभरे मंगलमय रूप। इस प्रकारसे अपनेको हटा दे, भगवानुको समझ्ँ मैं भी एकमात्र तुमको ही केवल 'मेरा'। बैठा दे। जगत्में मेरेपनको दूर कर ले और उसकी जगह तुरत मेरे जीवनसे सब मायाका भगवान्को बैठा दे और अपने ऊपर भगवान्का पूर्णाधिकार [पद-रत्नाकर पद-संख्या १००] स्थापित करवा दे। भगवान्से कह दे कि तुम अब जब ये मायाका डेरा जायगा तो जीवनमें भगवत्ता आयेगी, भगवान् मेरे हो जायँगे और मैं भगवान्का हो स्वच्छन्दतासे कहो कि अब ये मेरा है, संकोच करते हैं न भगवान्। बोले मेरा कह दें और कलको इससे काम लें तो जाऊँगा तब संसारका हमारा अनुभव बदलेगा, वह अनुभृति कैसी होगी— कह देगा 'न महाराज!' ये कैसा सम्बन्ध! गड़बड़ होती है ये बात। भगवान्से हम कह दें, भगवान्को हम समझा जगमें सुख-दुख, लाभ-हानि, चिरजीवन-मृत्यु, मान-अपमान। दें, भगवान्के दिलमें बैठा दें कि हम तुमपर कभी सन्देह सभी तुम्हारे खेल, सभीमें भरे तुम्हीं, मेरे भगवान॥ नहीं करेंगे। हम कभी तुम्हारे अधिकारपर सन्देह नहीं इससे मिलता मुझे सर्वदा सबमें सुखद तुम्हारा स्पर्श। करेंगे, तुम जो चाहो, जब चाहो, जैसे चाहो, जहाँ चाहो, अतः नहीं हो पाते मनमें कभी शोच, उद्वेग, अमर्ष॥ अपनी चीजको अपनी भाँति तुम बरतो, तुम्हारा ही मेरेपर किसी अवस्थामें भी होती नहीं अशान्ति, नहीं उर-दाह।

हँसमुख सदा दीखता, प्रभुका नित्य नवीन पूर्ण उत्साह।।

पूर्ण अधिकार है अर्थातु तुम ये कह दो कि ये मेरा, ये मेरा।

भाग ९० \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* एक शंकराचार्य, एक चैतन्य—क्या किया इन लोगोंने ? दुःख-मरण दारुणमें भी तुम मधुर दिखाते मोहन रूप। सारे जगत्को सुवासित कर दिया अपने जीवन-वाटिकाके होता सब विस्मरण, एक बच रहता चिन्मय मोद अनूप॥ छाये रहते सतत नित्य प्रति-दिक्में परम शान्ति-आनन्द। सुमनोंके सौरभसे, ये सौरभ कहाँसे आया ? उनके जीवनमें ये अबीर—महान् मंगलमय सुगन्ध कहाँसे उत्पन्न हुई ? हो चाहे कैसा भी कहीं मनोहर-घोर काण्ड स्वच्छन्द॥ जो चिर सौरभमय है, जो चिर सुगन्धमय है, जो सभी दृश्य हैं, सभी तुम्हीं लीलामयके अभिनय सुन्दर। सबमें तुम्हीं नृत्य करते नित नटनागर ऋषि-मुनि-मन-हर॥ नित्य-नित्य मंगलमय है, जो नित्य-नित्य परम आनन्दमय है, जहाँ भय-शोकको स्थान नहीं, जहाँ अमंगलके लिये [पद-रत्नाकर पद-संख्या १२४८] प्रत्येक अवस्थामें, प्रत्येक दशामें, प्रत्येक परिस्थितिमें, जगह नहीं; उन मंगलमय, आनन्दमय, शान्तिमय, प्रेममय, प्रत्येक प्रसंगमें, प्रत्येक प्राणीमें, प्रत्येक वस्तुमें भगवान् सौन्दर्य-माधुर्य-सुधानिधि भगवान्के साथ उनका सम्पर्क जब जीवनमें आ जाते हैं तो भगवानुका स्पर्श प्राप्त होता हो गया। उनके जीवनमें भगवान् आ गये। बस, भगवान् जहाँ जीवनमें आये, वहाँ अपने-है, भगवान् उसके अन्दर-बाहर भर जाते हैं। वैसी अवस्थामें जगत्का जो रूप आज है, उसमें भी हमको भगवान्का आप सारी चीजें हो गयीं, सारे संकल्प उसके मिट गये। दर्शन होना चाहिये, किंतु जरा-सी प्रतिकुलता होते ही हम अब भगवान् उनके अन्दर प्रविष्ट हो गये, उनकी बुद्धि क्षुब्ध हो जाते हैं, जरा-सी किसीके द्वारा अपनी अमंगल भगवान् बने, मन भगवान् बने। कल्पना करते ही उसपर क्रोधित होते हैं, हिंसा करने लगते मेरे धन-जन-जीवन तुम ही, तुम ही तन-मन, तुम सब धर्म। हैं, बुरा चाहने लगते हैं, जरासे अपने मनमें, मनके अनुसार तुम ही मेरे सकल सुखसदन, प्रिय निज जन, प्राणोंके मर्म॥ न होनेपर भी हम दूसरोंको नीच मानने लगते हैं। दु:खमें, तुम्हीं एक बस, आवश्यकता, तुम ही एकमात्र हो पूर्ति। अपमानमें, मृत्युमें, हानिमें —ये हमारे बनाये हुए नाम हैं; तुम्हीं एक सब काल सभी विधि हो उपास्य शुचि सुन्दर मूर्ति॥ हानि, दु:ख, मृत्यु, मरण, अपमान ये सब हमारे बनाये तुम ही काम-धाम सब मेरे, एकमात्र तुम लक्ष्य महान। हुए, हमारे निर्माण किये हुए नाम हैं। इन सारे नामोंमें सारी आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान॥ परिस्थितियोंमें एकमात्र भगवान् खेलते हैं, वही नाचते हैं, सभी इन्द्रियोंको तुम शुचितम करते नित्य स्पर्श-सुख-दान। हम उनका नाच नहीं देख पाते। इसलिये कहीं क्षुब्ध होते बाह्याभ्यन्तर नित्य निरन्तर तुम छेड़े रहते निज तान॥ हैं, कहीं अमर्ष करते हैं, कहीं हर्षान्वित हो जाते हैं, कहीं कभी नहीं तुम ओझल होते, कभी नहीं तजते संयोग। शोक करते हैं, कहीं भय करते हैं। जब भगवान्की भगवत्ता घुले-मिले रहते करवाते करते निर्मल रस-सम्भोग॥ हमारे हृदयमें, जीवनमें आ जायगी, जब हम भगवान्को पर इसमें न कभी मतलब कुछ मेरा तुमसे रहता भिन्न। मेरा कहेंगे और जब भगवान् हमपर पूर्णाधिकार करके हुए सभी संकल्प भंग मैं-मेरेके समूल तरु छिन्न॥ अपना मेरा कह देंगे; तब स्वाभाविक जीवनमें ये चीजें भोक्ता-भोग्य सभी कुछ तुम हो, तुम ही स्वयं बने हो भोग। खिल उठेंगी, प्रकाशित हो उठेंगी, हमारा अपना जीवन मेरा मन बन सभी तुम्हीं हो अनुभव करते योग-वियोग॥ भगवानुका जीवन बन जायगा। दैवी-सम्पत्तिके फुल फिर [पद-रत्नाकर पद-संख्या ६१२] खिलाने नहीं पड़ेंगे, इनके बीज फिर बोने नहीं पड़ेंगे। इस प्रकार जब भगवान् मेरे बने और मैं भगवान्का जहाँ हम भगवान्के आश्रित हुए, भगवान्को मेरा बना तो बस, भगवान् ही भगवान् रह गये। भगवान्की कहा, वहाँ दैवी-सम्पत्तिके बगीचेके सारे पुष्प अपने-सत्ता, भगवान्की महत्ता, भगवान्की भगवत्ता जीवनमें आप खिल उठेंगे, वे कभी मुरझायेंगे नहीं। ये फूल मुरझाते जाग्रत् हो गयी। यही जीवनका असली और सबसे ऊँचा हैं, वे फूल मुरझायेंगे नहीं, उनका विकास उत्तरोत्तर अधिक-लक्ष्य है। इसीकी प्राप्ति जीवनमें हो जाय—इसीके लिये से-अधिक और सुन्दर होगा, मनोहर होगा, सुगन्धमय होगा, सत्संग आदि ये सभी चीजें हैं, साधन-वाधनसे कुछ सौरभमय होगा और उस बगीचेके—हमारे जीवन-वाटिकाके होगा नहीं, साधनका अभिमान भले ही हो जाय, पर जो समाप्तें के शिक्ष के अपने अपने के अपने

आध्यात्मिक लीलाका रहस्य संख्या ३ ] आध्यात्मिक लीलाका रहस्य ( ब्रह्मलीन वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज ) साध्-सद्गुरुका हृदय भक्तिका प्रांगण (आँगन) परमात्मामें तथा अपनी आत्मामें स्थिर रखता है ताकि होता है। उनके हृदयमें अमृतकुण्ड होता है। उनके किसी स्थिति तथा परिस्थितिका उसकी साधनापर कोई विशुद्ध प्रेम एवं निष्काम भक्तिभावके कारण भगवान् विपरीत प्रभाव न पड़े और उसका तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्तिका सन्तों एवं भक्तोंके वशमें हो जाते हैं। उनके द्वारा लक्ष्य बाधित न हो। बतलाये गये वैध-कर्मों यथा—जप, ध्यान, अनुष्ठान, तत्त्व-ज्ञानका अर्थ है-भगवान्के स्वरूपका ज्ञान उपासना, तीर्थ-यात्रा एवं तप आदिके द्वारा जीव कुकर्मोंसे तथा वह ज्ञान जो अनुकूल और प्रतिकूलको अपने छूटकर प्रभुकी प्रेमा-भक्तिको प्राप्त कर लेता है। स्वरूपमें समाहित (स्थापित) कर दे। ऐसी ज्ञानकी धारा निर्जनमें ज्ञान और भक्ति प्राप्त करके और ईश्वरका जो अज्ञानको शुद्ध कर दे, विषको अमृत-तुल्य बना दे, चिन्तन करके साधक भक्तको यह पता चल जाता है कि शान्ति और आनन्दका अनुभव करा दे, जीवको प्रभुके स्वरूपमें समाहित कर दे, अपने स्वरूपका ज्ञान करा दे इस संसारमें अपना कोई नहीं है। केवल भगवान् ही मेरे अपने हैं और वे ही मेरे सर्वस्व हैं। उन्हें किस तरह मैं और परमात्मा और जीवका मिलन करा दे। यह तत्त्व-पाऊँ, यह अभिलाषा है। यह भावना उस साधक भक्तके ज्ञानका स्वरूप है। तत्त्व-ज्ञानमें अहं नहीं रहता। तत्त्व-ज्ञान तत्त्वयोगको भी कहते हैं, जिसमें तत्त्वोंका मिलन हृदयमें जाग्रत् हो जाती है। वैराग्यप्राप्त साधक भक्त संसारमें निर्लिप्त भावसे रहने लगता है। ईश्वरसे होता है। संसारमें निर्लिप्त होकर रहना तो बहुत कठिन है, भगवान्के स्वरूपके ज्ञानके साथ-साथ आत्म-परंतु साधक निर्जन स्थानपर रहकर सद्गुरुसे ज्ञान और ज्ञानको भी जानो। आत्मा निष्काम कर्मयोगी है, मर्यादा-भक्ति प्राप्त कर सकता है। पॉॅंकाल-मछली (कीचडमें पुरुषोत्तम है और सबका कल्याण चाहती है। आत्मा अद्वैत है। आत्मा शरीरमें रहती है, परंतु निर्लिप्त है। आत्मा रहनेवाली मछली)-की देहको कीच छू नहीं सकता। प्रारब्धके अनुसार शरीरके संग रहती है। जबतक जीवात्मा इस स्वरूपका ध्यान करके साधक संसारमें निर्लिप्त भावसे रहता हुआ अपनी साधना करता है। मुक्त नहीं होती, तबतक जीवात्मा मृत्युके पश्चात् सूक्ष्म इस बातको इस प्रकार समझो। यह संसार पानीकी वासनाओंके कारण दूसरे कारण शरीरमें आती रहती है। तरह है और मनुष्यका मन दूधकी भाँति है। अगर हम साधनाका प्रसंग चल रहा है। साधक ध्यान करते-करते ध्येयमें मिल जाता है। उसकी वाणीमें प्रेमरसका पानीमें दूध रखना चाहें तो दूध और पानी एक हो जायँगे। यह सत्य है। दूधसे निर्मित मक्खनको यदि हम प्रकट होना ही साधनाका फल है। चित्तमें विकारोंका पानीमें रखें तो फिर वह पानीमें नहीं मिलता। मक्खन मिटना ही उसके ध्येयमें मिलनेके लक्षण हैं। निर्लिप्त स्वरूप है। वह निर्लिप्त होकर पानीमें तैरता ज्ञान-वृद्ध (विद्वान्, अनुभवी) सन्तोंको जीवोंके स्वरूपको देखते ही उनकी मनोवृत्तिका ज्ञान हो जाता रहता है। इसी प्रकार साधक भक्त निर्जन स्थानपर रहकर तथा ज्ञान और भक्ति सद्गुरुओंसे प्राप्त करके संसारमें है, परंतु वे मौन रहते हैं, प्रभु-आज्ञासे ही यथार्थताको निर्लिप्त भावसे विचरता है। प्रत्येक साधकको निर्जन प्रकट करते हैं। उन्हें प्रभु-आज्ञामें ही रहना है, इस बातका उन्हें ध्यान रखना होता है। वहीं साधक इस स्थानमें वास करते हुए साधना करनी चाहिये। मनको एकाग्र करनेका यही साधन है। इससे परमात्माके संग ज्ञानको अपने भीतर छिपाये रखता है, जो प्रभु-आज्ञामें बने रहनेकी अनुभृति होती है। साधक अपने चित्तको रहता है। जो साधक इस गुप्त रहस्यको अपनेमें पचा

इन्हें अपने चितवन (दृष्टि)-में होते रहते हैं। जो साधक नहीं पाता, वही कंचन, कामिनी और कीर्तिके बन्धनमें फँस जाता है। निष्कामभावसे इनकी शरणमें रहता है, वह कृतार्थ हो जिस साधककी दुष्टिमें और मनमें भगवान् बसे हैं, जाता है। ऐसे शरणागत साधककी अहंता-ममता शुद्ध वही साधक ब्रह्मचर्यका पालन कर पाता है। ऐसा हो जाती है, उसका व्यवहार शुद्ध हो जाता है और साधक प्रभुकी शरणमें रहता है। वह किसीसे कुछ उसके आध्यात्मिक जीवनमें सुधार आता है। यह कहता नहीं और अपनी मस्तीमें मस्त रहता है। ऐसी आध्यात्मिक जीवन प्रभु-कृपाका फल है, सद्गुरु-कृपाका फल है तथा इसके लिये आवश्यक है कि साधक, अच्छी आध्यात्मिक स्थितिको प्राप्त साधक भगवान्की कृपाका पात्र होता है और उनकी आज्ञामें रहता है। सन्तके मनमें संसारके प्रति वैराग्यका भाव बना रहे। ऐसे साधककी भगवान् परीक्षा भी लेते हैं। भक्ति तभी परिपूर्ण होती है, जब भगवान्के भगवानुको उस साधककी मनोवृतिको जाननेकी इच्छा स्वरूपका ज्ञान करवानेवाले विद्वान्, विरक्त और त्यागी होती है। उस परीक्षामें कोई तीव्र जिज्ञास, साधक या सद्गुरु मिल जायँ और साधक, भक्तके मनमें भी प्रभु-कोई अवधृत सन्त ही पूरा उतरता है। उसके पश्चात् ही प्राप्तिकी तीव्र लालसा हो। हम संसारमें रहें, परिवारमें वे परिपूर्ण स्वरूपको प्राप्त कर पाते हैं और परमात्माके रहें, कर्म करें तथा खेलें-कूदें, परंतु अपने कल्याण स्वरूपमें समाहित हो जाते हैं। करनेके लक्ष्यपर दृष्टि बनी रहे। आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करनेके लिये सद्गुरुओंके, विरक्त सन्तोंके एवं आओ, अब अवधृत महात्माके स्वरूपको जानो। देखो, यह अवधूत महात्माकी गुफा है। ये अवधूत अवधृत महात्माओंके आशीर्वादको प्राप्त करना जरूरी शंकर-स्वरूप हैं, अपनी मस्तीमें रहते हैं। ये मौन और है। वे भगवद्-स्वरूप हैं, ऐसा शुद्ध मनमें विश्वास बन गया तो श्रद्धालुजनका बेड़ा पार है। जिसके हृदयमें सत्य-स्वरूप हैं। यहाँ हम अपने हृदयको पवित्र करने आये हैं। भक्तिका रहस्य और महिमा जाननेके लिये, भगवानुके पवित्र नामका स्मरण बना रहता हो और मनमें पाप-तापकी निवृत्तिके लिये और अपने जीवनको सुखमय प्रभुके स्वरूपका ध्यान हो तो साधक, भक्त और बनानेके लिये हम यहाँ इन अवधूत भगवान्जीकी भगवानुके बीचमें किसी सेतुकी जरूरत नहीं पडती।

करते रहते हैं, मौन रहते हैं, हृदयमें ही भगवानुकी आध्यात्मिक स्वरूपको हमें अपने हृदयमें धारण करना आध्यात्मिक लीलाओंका स्मरण-ध्यान करते रहते हैं है, जिससे भक्ति स्थिर रह सके और हम प्रभुके नामरूपी और आनन्दमें रहते हैं। भगवानुका सच्चिदानन्द स्वरूप इनके हृदयमें रहता है और भगवान्के स्वरूपके दर्शन ——— अमृत−कण

शरणमें आये हैं। मनका धर्म भी यही है कि वह

ये अवधृतजी महाराज वृक्षके नीचे बैठकर साधना

भगवानुकी शरणमें रहे।

अमृतरसका पान करते रहें। [ प्रेषक—स्वामी श्रीआनन्दस्वरूपजी ]

साधक, भक्त भगवानुके श्रीचरणोंकी शरणागतिमें रहता

यही सत्य है। भगवद्-लीलाके दर्शन और इस

है। यही है आध्यात्मिक लीलाका रहस्य।

भाग ९०

'जीवनका कोई-भरोसा नहीं, कमलदलपर जैसे जल स्थिर नहीं रह सकता, वैसे ही यह जीवन है। इसमें अल्पकालके लिये जो सत्पुरुषोंका संग प्राप्त होता है, वही संसाररूपी समुद्रको तरनेके लिये नौकाका काम देता है।'

'धैर्य जिसका पिता है, क्षमा माता है, शान्ति पत्नी है, सत्य पुत्र है, दया बहन है, मन-संगम भ्राता है, पृथ्वी शय्या है, दिशाएँ वस्त्र हैं, ज्ञानामृत भोजन है—इतने जिसके कुटुम्बी हैं, बताइये, ऐसे योगीको किसका भय है।

साधकोंके प्रति— संख्या ३ ] साधकोंके प्रति— [सभी परमात्मप्राप्ति कर सकते हैं] ( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज ) एक ऐसी बात है, जिसकी महिमा मैं कह नहीं सकता। गृहस्थ हो, वानप्रस्थ हो अथवा संन्यासी हो; बीमार हो अगर आप ध्यान दें तो सदाके लिये निहाल हो जायँ। वह अथवा स्वस्थ हो; अनपढ़ हो अथवा पढ़ा-लिखा हो; निर्धन हो अथवा धनवान् हो—सब-के-सब परमात्माकी यह है—ऐसा कोई पारमार्थिक साधन है ही नहीं, जिसके लिये हम कह सकें कि इसको तो हम नहीं कर सकते, प्राप्तिके अधिकारी हैं। इसमें आप खूब शंका करें; शंका और ऐसा कोई सांसारिक कार्य नहीं है, जिसको सब कर टिकेगी नहीं! सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिमें कोई भी स्वतन्त्र सकते हों। कारण कि परमात्मप्राप्तिकी योग्यता, सामर्थ्य नहीं है; क्योंकि उनकी प्राप्ति दूसरोंके अधीन है। दूसरेकी तो सभी मनुष्योंमें नहीं है। जैसे कामनाकी पूर्ति करना और अधीनता स्वीकार किये बिना, दूसरेकी सहायता लिये बिना कामनाका त्याग करना—ये दो बातें हैं। कामनाकी पूर्ति अकेला कोई सांसारिक भोगोंको भोग ही नहीं सकता, कभी कोई कर ही नहीं सकता। हम इन्द्र बन जायँ, महाराजा परंतु परमात्माकी प्राप्ति अकेला ही कर सकता है, क्योंकि बन जायँ, बड़े धनी बन जायँ, कितनी ही सम्पत्ति इकट्ठी परमात्माकी प्राप्तिमें किसीकी सहायताकी किंचिन्मात्र भी कर लें, तो भी कामनाकी पूर्ति कभी हो ही नहीं सकती, आवश्यकता नहीं है। परमात्माकी प्राप्तिमें सब-के-सब परंतु कामनाका त्याग हो सकता है। सांसारिक पूर्ति कोई स्वतन्त्र हैं। कभी कर ही नहीं सकता और परमात्माकी प्राप्ति सभी पारमार्थिक बात बतानेवाले भी हर समय तैयार हैं। कर सकते हैं। इसमें कोई अयोग्य है ही नहीं; क्योंकि दत्तात्रेयजी महाराजने चौबीस गुरु बनाये तो पारमार्थिक बात बतानेवालोंको ही गुरु बनाया, नहीं बतानेवालोंको परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्य-शरीर मिला है। जिस कामके लिये शरीर मिला है, वही काम यदि नहीं कर वे गुरु कैसे बनाते ? गुरुका कभी अभाव होता ही नहीं। सकता तो फिर क्या कर सकेगा वह ? सांसारिक पूर्तिके बालकपनमें खिलौनोंकी कामना होती है, पर आज लिये शरीर मिला ही नहीं है तो फिर उसकी पूर्ति कैसे कर खिलौनोंकी कामना होती है क्या? इससे सिद्ध हुआ कि सकता है ? कर ही नहीं सकता। कामना छूटती है। यह आपके अनुभवकी बात है। सांसारिक परमात्माकी प्राप्ति करनेमें, सांसारिक कामनाका त्याग कामना टिक नहीं सकती। एक कामना छूटती है तो आप करनेमें सब-के-सब स्वाधीन हैं और सांसारिक कामनाकी दूसरी कामना पकड़ लेते हैं। इस तरह आप नयी-नयी पूर्ति करनेमें सब-के-सब पराधीन हैं। सांसारिक कामना कामना पकडते रहते हैं। अगर पकडना छोड दें तो निहाल पूरी करनेमें कभी कोई समर्थ है ही नहीं, परंतु कामनाका हो जायँ। परमात्मप्राप्तिकी कामना तो कभी किसीकी नहीं त्याग करनेमें, परमात्माकी प्राप्ति करनेमें सब-के-सब समर्थ मिटती, केवल दब जाती है। जो कामना टिकती नहीं, हैं, कोई असमर्थ नहीं है। सब-के-सब पात्र हैं, कोई उसको तो पकड़ते रहते हैं और जो कामना मिटती नहीं, अपात्र नहीं है; सब-के-सब योग्य हैं, कोई अयोग्य नहीं उसकी तरफ ध्यान ही नहीं देते—यह हमारी वस्तुस्थित है। सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्ति दो मनुष्योंको भी कभी है। परमात्मप्राप्तिकी कामना पूरी करनेमें आप सब सबल हैं, निर्बल नहीं हैं, परंतु सांसारिक कामना पूरी करनेमें आप एक समान नहीं होती, पर परमात्माकी प्राप्ति सबको एक

सब निर्बल हैं, कोई सबल नहीं।

हैं क्या?

श्रोता—संसारकी इच्छा और परमात्माकी इच्छा—

दोनों बिलकुल विपरीत होते हुए भी एक ही जगह रहती

समान होती है। पहले नारद, व्यास, शुकदेव आदि

महात्माओंको जिस तत्त्वकी प्राप्ति हुई है, उसी तत्त्वकी

प्राप्ति आज भी कोई करना चाहे तो कर सकता है। ब्राह्मण

हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो अथवा शूद्र हो; ब्रह्मचारी हो,

िभाग ९० स्वामीजी—दोनों इच्छाएँ एक ही जगह होती हैं। उन इच्छाओंसे भी आप अलग रह सकते हैं। जहाँ भोगकी इच्छा है, वहीं मोक्षकी इच्छा है। भोगकी वास्तवमें आप स्वयं संसारमें रहते ही नहीं, प्रत्युत इच्छा निवृत्त होगी और परमात्माकी इच्छा जाग्रत् हो जायगी। परमात्मामें ही रहते हैं—'ममैवांशो जीवलोके' (गीता संसारकी इच्छाको मिटा दो तो परमात्माकी इच्छा आप-१५।७)। संसारमें तो शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि रहते से-आप पूरी हो जायगी। संसारकी इच्छा कभी पूरी नहीं हैं—'मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि' (गीता १५।७)। जो आपके नहीं हैं, उन शरीरादिको तो आप होगी। लाखों, करोड़ों, अरबों जन्म हो जायँगे तो भी पूरी नहीं होगी, प्रत्युत नयी-नयी पैदा होती रहेगी—'जिमि अपना मान लेते हैं और जो आपके अपने हैं, उन प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।' परमात्माको आप अपना नहीं मानते—यह खास भूल है। श्रोता—दोनों विपरीत इच्छाएँ एक ही जगह कैसे श्रोता—परमात्माको देखे बिना अपना कैसे मानें? रहती हैं? स्वामीजी — आप स्वयं दीखते हो क्या ? आप कहते स्वामीजी-एक इच्छाको तो आपने पकड़ा और हैं कि शरीर मेरा है, इन्द्रियाँ मेरी हैं, मन मेरा है, बुद्धि मेरी एक इच्छा आपमें स्वतः है। संसारकी इच्छाको तो है, तो इससे सिद्ध होता है कि आप शरीर-इन्द्रियाँ-मन-आपने पकड़ा है और परमात्माकी इच्छा आपमें खुदमें बुद्धिसे अलग हैं। अत: आप कैसे हैं? आपका रंग-रूप है। मैं सदा जीता रहूँ, मेरेमें और कोई अज्ञान न रहे, कैसा है ? बताओ। आप स्वयं नहीं दीखते, फिर भी अपनेको में सदा सुखी रहँ - यह आपकी खुदकी इच्छा है। मानते हो कि नहीं ? अभी तो बात चल रही है, उसकी भोगोंकी इच्छा आपकी खुदकी नहीं है। तरफ आप ध्यान तो दो, जिस इच्छाकी पूर्ति नहीं हो सकती, इच्छाके प्रेरक आप खुद ही हैं। अगर आप खुद उसको तो छोड़ दो और जिस इच्छाकी पूर्ति हो सकती है, सांसारिक इच्छाको छोड़ दें तो वह टिक सकती ही नहीं। उसको पकड़ लो—इतनी ही तो बात है। सिद्धान्तकी एकदम जिसकी पूर्ति होनी असम्भव है, उसको तो छोड ही देना पक्की बात है। 'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं चाहिये। सांसारिक इच्छा इसलिये पूरी नहीं होती कि संसार **ततः।**' (गीता ६। २२) 'नहीं' है और परमात्मप्राप्तिकी इच्छा इसलिये पूरी होती —जिसकी प्राप्तिसे बढ़कर दूसरा कोई लाभ है ही है कि परमात्मा 'है'। सांसारिक वस्तुएँ कभी सदा नहीं नहीं और दु:ख जिसके नजदीक ही नहीं पहुँचता, रहतीं, मिट जाती हैं, पर परमात्मा सदा ही रहते हैं। उसकी प्राप्ति आप सबको हो सकती है; परंतु यह तब श्रोता—संसारमें रहकर संसारकी इच्छासे अलग होगी, जब आप दूसरी (सांसारिक) इच्छा नहीं रखोगे। अगर परमात्माकी इच्छा भी रहेगी और संसारकी इच्छा कैसे रह सकते हैं? भी रहेगी, तो काम नहीं बनेगा—'दुविधामें दोनों गये, स्वामीजी — संसारमें रहकर भी सब तरहकी इच्छा होती है क्या ? नहीं हो सकती। बनावटी इच्छा सब तरहकी माया मिली न राम।' श्रोता—भगवान् सांसारिक कामना पैदा कर देते हैं! कैसे हो सकती है ? भोजनमें भी दो आदिमयोंकी एक इच्छा नहीं होती। किसीको मीठा अच्छा लगता है, किसीको स्वामीजी-भगवान् कभी किसीकी कामना पैदा मिर्च अच्छी लगती है। किसीको थोडी मिर्च अच्छी लगती नहीं करते, नहीं करते, नहीं करते! कामना तो आपकी अपनी बनायी हुई है। आप सच्चे हृदयसे प्रार्थना करो तो है, किसीको ज्यादा मिर्च अच्छी लगती है। इस तरह संसारकी सब इच्छाएँ सबको नहीं होतीं। अत: संसारकी इच्छा भगवान् मिटा देंगे। जिससे आपपर आफत आये, ऐसा छूटनेवाली है। जैसे संसारकी दूसरी इच्छाओंसे आप अलग काम भगवान् नहीं करते; क्योंकि आप भगवान्के अंश हैं। रहते हैं, ऐसे ही जिन इच्छाओंको आपने पकड़ रखा है... अंशी अपने अंशका विगाड़ कैसे कर सकता है ? Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

| संख्या ३ ] खेलत स्यामा-स्याम  | लिलत ब्रजमें रस-होरी १९  |
|---|--|
|   | <sub>क्रक्रक</sub> ्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्                  |
| ( श्रीअर्जुनत   | गालजी बंसल )   |
| ब्रजमण्डलका सबसे निराला और अनूठा महोत्सव  | सारी पहिरि सुरंग किस कंचुकी काजर दै दै नैन।                                  |
| है होली, जिसकी मादकता बसन्त पंचमीसे सारे प्रदेशमे                                       | बिन बिन निकसी निकिस भई ठाढ़ी सुनि माधौ के बैन॥                               |
| छा जाती है। फागुनका महीना है भी ऐसा ही, जब  | दोनों पक्ष अपनी पूरी तैयारीके साथ आये थे।                                    |
| गोप-गोपियोंके रोम-रोममें मस्ती अपना रंग दिखाने  | पिचकारीके रंग और गुलालका भरपूर भंडार था। समस्त                               |
| लगती है। घर-घरमें साखाचार होता है, कहीं ब्रज-   |  |
| ललनाएँ पैरोंमें घुँघरू बाँध थिरकती दिखायी देने लगती                                     |  |
| हैं। कहीं-कहीं ग्वाल-बाल ब्रजकी वीथियोंमे   | श्रीकृष्णके प्रति प्रेमका प्रदर्शन करने लगीं। तनपर रंग-                      |
| ब्रजललनाओंके संग नाचते-गाते दृष्टिगोचर होते हैं   | · •  |
| बसन्तके आगमनके साथ ही भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधारानीके                                   | •  |
| संग सर्वत्र होली खेलते देखे जा सकते हैं। कान्हा जब                                      |  |
| होली खेलते हैं, सारा आकाशमण्डल गुलालके रंगोंसे  | -  |
| ढक जाता है और धरतीमाता श्रीवृषभानुनन्दिनी राधारानीकी                                    |  |
| पिचकारीसे छूटे सतरंगी रंगोंसे अपना शृंगार करती हैं                                      |  |
| इन्हीं पलोंकी प्रतीक्षा करते-करते एक दिन ललिता  |  |
| सखीने श्रीराधारानीको संकेतकर कहा—हे प्रियाजी!   | मिलि दस पाँच अली चली कृष्निह गिह लावित अचकाई।                                |
| तेरैं आवैंगे आजु सखी हरि खेलन को फाग री।  | भरी अरगजा अबीर कनक घट देति सीस तैं नाई॥                                      |
| सगुन संदेसौं हौं सुन्यौ तेरे आँगन बोलै काग री।  |  |
| मदन मोहन तेरै बस माइ, सुनि राधे बड़भाग री।  | सोभित है तनु साँझ समै-घन आए हैं मनु पूरि॥                                    |
| बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ का सोवै उठि जाग री।  | S. S. S.   |
| चोबा चंदन लै कुमकुम अरु केसरि पैयाँ लाग री।   | सुर विमान कौतूहल भूले निरखत स्याम विनोद॥                                     |
| सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौ राधा अचल सुहाग री।  |  |
| फागुनका वह मस्त महीना जिसकी हर तरुणीको  |  |
| प्रतीक्षा रहती है, अन्ततः आ ही गया। हे राधेरानी!  |  |
| तुम्हारे आँगनमें कागकी वाणी सुनायी दे रही है, यह इस                                     | 3  |
| बातका शुभ संकेत है कि कान्हा आज होली खेलने<br>नाहारे हामार अपोंगे।                      |  |
| तुम्हारे द्वारपर आयेंगे।<br>उधर श्रीकृष्ण अपने बाल सखाओंके संग होली                     | राधा-संग सखी-सहचरि सब मिलि केसर-रँग-घोरी॥                                    |
| उवर श्राकृष्ण अपन बाल संखाजाक संग हाला<br>खेलने बरसानाकी ओर चल पड़े। इधर श्रीराधारानीको | •  |
| खलन बरसानाका आर यल पड़ा इयर त्रारावारानाका<br>जब उनके आगमनका सन्देश मिला तो वे अपनी     |  |
| जब उनक जाननाका सन्दर्श निला ता व जवना<br>सिखयोंके संग उनके स्वागतके लिये रँगीली गलीमे   | •  |
| पहुँच गयीं। वहाँ श्रीकृष्णसे भेंट होते ही होलीका  | 3 3  |
| पहुंच गया। यहा श्राकृष्णस मट हात हा हालाका<br>पारम्परिक खेल प्रारम्भ हो गया—            | स्थाम-मुख अरुन मया रा॥<br>ब्रजमें श्रीराधाकृष्ण होलीके मधुर रंगोंमें भीग रहे |
| हरि संग खेलत हैं सब फाग।  | हैं। श्रीराधारानीने अपनी सखी-सहेलियोंकी सहायतासे                             |
|   | केसरका रंग घोल सुगन्धित जल तैयार किया है। वे                                 |
| , -   | <u> </u>   |

भाग ९० कल्याण सब मिलकर उस जलसे श्यामसुन्दरके शरीरको भिगोने होलीके इस मादक पर्वपर श्रीराधारानी और उनकी लगी हैं। बार-बार उनके मुखको केन्द्रितकर अपनी सिखयाँ श्रीकृष्ण-प्रेमको हृदयमें धारणकर कुमकुम पिचकारीसे केसरिया रंग मार रही हैं। अब उन केसरयुक्त रंग अपनी पिचकारीमें भरकर मोहनको नख-सिखयोंने मिलकर श्रीकृष्णको घेरकर उनके मुखपर शिख भिगो रही हैं। इधर गुलालकी धुआँधार वर्षासे ब्रजबालाओंका सौन्दर्य ऐसे चमक उठा, मानो वर्षा-गुलाल मल दिया है— देखि प्रसन्न सखियन सँग रंगिनि नवल किसोरी। ऋतुमें बादलोंकी लालिमामें बिजली चमक रही हो! होलीके रंगोंसे सराबोर हो और प्रियाजीकी पिचकारीसे उमग्यौ हिय आनंद सिंधु हरि रँग दीन्ही सब गोरी॥ निकली फुहारोंके सामने कान्हाने आत्मसमर्पण कर सुरस-संग्राम मच्यौ री॥ श्रीकृष्णने श्रीराधारानी और उनकी सिखयोंको दिया। भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने इस लीलाका प्रसन्न जान अपने प्रेमरंगमें रँग दिया। रंग और गुलालके सरस वर्णन करते हुए पद-रत्नाकरमें लिखा है-साथ प्रियाजी और कान्हाजीकी टोलियोंके बीच मचे होरी में हार सकल खल-दल-संहारी। घमासानके कारण-सखी-सहचरी सब कौं लै सँग, भरी रस-रँग पिचकारी॥ भूमि लाल, नभ-लाल, लिलत रँग सब दिसि लाल छयौ री। मधुर बदन, कोमल सब तन पर हेरि-हेरि कै मारी। लाल लता-तरु, लाल-सुमन-फल, निधुबन लाल भयौ री॥ रँगीली कीर्ति-कमारी॥ मोर-चकोर लाल भए, अलि-कुल रंग गुलाल लह्यौ री। लाल कपोल गुलाल लपेटे, दूग सुरिभत जल डारी। लाल निकुंज लाल सुक-कोकिल, लाल रसाल बन्यौ री॥ भाजि चले मन-मोहन सोहन पौंछत नयननि बारी॥ लाल दिवस-निसि, लाल सूर्य-सिस, लाल छितिज सु छयौ री। हँसी सिख दै कर-तारी॥ मुरली कर सौं परी धरनि पर, मोर-सिखा महि डारी। लाल सलिल कालिंदी सोभित, लाल बयार बह्यौ री॥ भए स्त्रमित, मृदु चरन डगमगे, बैठि गए मन मारी॥ ललना-लाल लाल भए दोऊ सखी लाल रँग बोरी। नील-पीत पट, चुनरी-पगरी—सबै लाल रँग घोरी॥ घेरि लिए सखिन मुरारी॥ इस सुअवसरका सदुपयोग करते हुए श्रीराधारानीने सकल जग लाल भयौ री॥ —पृथ्वी और आकाश, लता-पता और वृक्षावलियाँ, कान्हाके कोमल तनपर अपनी रंग-भरी पिचकारीसे फूल और फल, पशु और पक्षी, कीट-पतंग और भ्रमरोंके रंगकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। गालोंपर लाल गुलाल और समूह, कुंज और निकुंज, रात और दिन, सूर्य-चन्द्रमा, शेष तनको सुगन्धित जलसे सराबोर कर दिया। इस दशामें अपने नयनोंको पोंछते हुए मनमोहनको भागते वायु और कालिन्दीकी जलधारा भी लाल हो गयी। प्रिया-प्रियतम और उनकी सिखयाँ, गोपोंकी पगड़ी और देख सिखयाँ ताली बजा-बजाकर हँसने लगीं। सहसा ब्रजबालाओंकी चुनरी सब लाल हो गये। ही भागते समय कन्हैयाकी वंशी और शीशके मयूर-पंख धरतीपर गिर पड़े। चलते-चलते उन्होंने विश्रामकी इस लीलाका वर्णन करते हुए रसखानजीने लिखा है— दृष्टिसे बैठनेका निर्णय लिया। सुअवसर जानकर सिखयोंने खेलत फाग सुहाग भरी अनुरागहिं लालन कों धरि कै। मारत कुंकुम केसरि के पिचकारिन में रँग कों भरि कै॥ वहीं जा घेरा और, गेरत लाल गुलाल लली मन मोहिनी मौज मिटा करि कै। मोहन छबीले को पकरि लीन्हों होरी माहिं, जात चली रसखानि अली मदमस्त मनों मन कों हरि कै॥ मोर को पखौआ छीन सारी सीस धारी है। मिलि खेलत फाग बढ़्यौ अनुराग सुराग सनी सुख की रमकैं। खञ्जन से नैनन में अञ्जन लगाय दीन्हो, दोनों मुख पान भाल बेंदी दई कारी है।। कर कुंकुम लै करि कंजमुखी प्रिय के दूग लावन कौं धमकैं॥ रसखानि गुलाल की धूँधर में ब्रजबालन की दुति यौं दमकैं। लाल बलवीर प्यारी प्रीतम बनाय दीन्हौ, मनौ सावन माँझ ललाई के माँझ चहुँ दिसि तें चपला चमकैं॥ रंग की कमोरी सीस ऊपर सौं ढ़ारी है।

संख्या ३] विएतनाममें शिवाजी महाराजकी प्रेरणा छेडछाड प्रारम्भ कर दी। किन्हींने दुलारा, किसीने पुचकारा, हँसे बूझे नारी बोली भानु की दुलारी प्यारी, कोई गालोंपर चिकोटी काटने लगी, कोई उनके मुखको आई मथुरा तें एक गोप की कुमारी है॥ सबने मिलकर कान्हाको दबोच लिया। अब वे कान्हाको चूमने लगी, कोई उनके घुँघराले बालोंको सहलाकर आनन्दित नरसे नारी बनानेमें लगी हैं। उनके तनपर लिपटा पीताम्बर हो रही थी। एक सखीने तो उनकी आँखोंका कजरा छुटाकर छीन साडी धारण करा दी। मतवारे नयनोंमें कजरा लगा अपनी आँखोंमें लगा लिया। श्रीराधारानी भी इस होलीके दिया, मुखमें पानका बीड़ा और माथेपर बिन्दिया सजा दी। आनन्दको जी भरकर भोगना चाहती हैं। प्यारे मनमोहनको सर्व प्रकारसे प्रियाजीका वेष धारण करा. इस लीलाका सरस चित्रण करते हुए पद्माकरजीने शीशपर केसरका रंग उडेल दिया। प्रियाजी प्रसन्न होकर लिखा है— अपनी सिखयोंसे कहने लगी—देखो, यह गोपकन्या मथुरासे फाग के भीर अभीरन में गिह गोविन्द लै गई भीतर गोरी। आयी है, कितनी प्यारी लग रही है। भाँय करी मन की पदमाकर ऊपर नांई अबीर की झोरी॥ इतनेपर भी जब वे सखियाँ सन्तुष्ट नहीं हुईं, तब छीनी पीताम्बर कम्मर से सुविदा दई मीड़ी कपोलन रोरी। कान्हाको घेरकर एक गोपीके आँगनमें ले जाकर उनसे नैन नचाइ कही मुसकाइ लला फिर अइयो खेलन होरी॥ विएतनाममें शिवाजी महाराजकी प्रेरणा ( श्रीकैलाशजी बंसल ) विएतनाम-इस छोटे-से देशने अमेरिका-जैसे मृत्यु हुई। उन्होंने अपनी समाधिपर जो वाक्य लिखनेके लिये कहे, वे थे—'शिवाजी महाराजका एक सैनिक शक्तिशाली देशको धूल चटायी थी। लगभग २० वर्ष चले इस युद्धमें अमेरिका परास्त हुआ था। विजयके बाद समाधिस्थ हुआ।' ये वाक्य हम आज भी इनकी विएतनामके राष्ट्राध्यक्षसे पत्रकारोंने प्रश्न पूछा कि समाधिपर देख सकते हैं। अमेरिकाको कैसे हरा पाये? युद्ध कैसे जीता? इसपर कुछ वर्षोंके बाद विएतनामकी विदेशमन्त्रीका उन्होंने उत्तर दिया, 'वास्तवमें अमेरिका-जैसी महाशक्तिको भारतका दौरा हुआ। तय राजकीय कार्यक्रमके अनुसार हराना असम्भव है, लेकिन उसी महाशक्तिसे जूझनेके उन्हें लालकिला और गाँधीजीकी समाधि दिखायी गयी, लिये मैंने एक महान् राजाका चरित्र पढ़ा। उससे मिली लेकिन ये दिखाते समय उन्होंने पूछा—'शिवाजी महाराजकी प्रेरणासे मैंने युद्धनीति बनायी, उसीको लागू किया और समाधि कहाँ है ?' तब भारतसरकार सन्न रह गयी और आसानीसे विजय पायी।' उत्तर दिया गया—'रायगढ़।' विएतनामकी विदेशमन्त्री आगे पत्रकारोंने पूछा, कौन था वह महान् रायगढ पहुँचीं और शिवाजी महाराजकी समाधिका

राजा? मित्रो! मैंने जब इसका उत्तर पढा तो मेरा सीना गर्वसे चौड़ा हो गया, जैसा अब आपका भी

होगा" तो इस प्रश्नपर विएतनामके राष्ट्राध्यक्ष अपने स्थानपर खड़े हुए और उन्होंने आदरसे कहा, 'छत्रपति शिवाजी महाराज।' आगे उन्होंने कहा कि 'यदि ऐसा

राजा हमारे देशमें पैदा होता तो आज हम पूरी दुनियापर राज करते।'

कुछ वर्षों बाद विएतनामके उन राष्ट्राध्यक्ष महोदयकी

दर्शन किया। उसके बाद उन्होंने रायगढकी मिट्टी उठायी और अपने बैगमें डाल ली। इसका कारण पत्रकारोंद्वारा पूछे जानेपर मन्त्री महोदयाने कहा कि यह मिट्टी शूर-वीरोंकी है। इसी मिट्टीमें शिवाजी-जैसे महान् चरित्रवान्

राजाका जन्म हुआ है। अपने देश वापस जाकर यह मिट्टी मैं अपने देशकी मिट्टीमें मिलाऊँगी, जिससे हमारे देशमें भी ऐसे ही शूर-वीर पैदा हों।

[ प्रेषक — श्रीसुरेन्द्रकुमारजी गोयल ]

वेदोंके अनुसार ब्रह्माण्डका दिव्य अप्—गंगा

# ( श्रीरामजी शास्त्री )

**'सर्वमापोमयं जगत्'** यानी ब्रह्माण्डमें अप् है।) अथर्ववेदके मन्त्रमें तीन प्रकारके जलकी घोषणा

की गयी है—'या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष (अम्भ:)-दिव्यजल व्याप्त है। वेदमें गंगाशब्द मात्र दो

बार उपयोगमें आया है। स्मृति एवं इतिहासमें सुमेरु उत वा पृथिव्याम्। तासां त्वा सर्वासामपामभि

पर्वतके ऊपर दिव्यनदी गंगाके जलप्रवाहका उल्लेख है। षिञ्चामि वर्चसा॥' (४।८।५) इस प्रकार तीन अप्

श्रुति-स्मृतिके अनुसार आकाशमें असंख्य ब्रह्माण्ड

हैं—दिव्य अप्, अन्तरिक्ष अप् और पृथ्वी या भूमि अप्।

दिव्य अप् सूर्यलोक द्युलोकका है। आनुष्ठानिक मन्त्र भी

हैं और अनेक सूर्य हैं। ऋग्वेद (१।१०५।१)-में कहा है—'**चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि'—**चन्द्रमा

अपुके अन्दर दौड रहा है। ब्राह्मण ग्रन्थोंसे लेकर उपनिषद्,

स्मृति, पुराणमें समूची सृष्टिकी उत्पत्ति अप् या जलसे

स्वीकारी गयी, किंतु अप्का सामान्य वैदिक अर्थ जल

लेना सही नहीं है। वेदोंके सूक्तोंका गृढ़ रहस्य प्रतीकात्मक, कृट शब्दोंमें है। उदाहरणके लिये वेदमें गौ शब्द सूर्यकी

रिशमयों, वाक्, प्रजनन, मातृत्व आदिके रूपमें प्रयुक्त है। वेदका अम्भ, अप् रसरूप द्रव है। अत: अम्भ: या अप्

ब्रह्माण्डका दिव्य जल है। ऋग्वेद (१।२३।१७)-में ही

उल्लेख है—'अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥' इसका अर्थ है कि सूर्यके नजदीक अप्

विद्यमान है। अथर्ववेद कहता है कि अग्नि और सूर्य अप्में ही उत्पन्न हुए—'हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यास् जातः सविता यास्विग्नः।' (१।३३।१) वैज्ञानिक

दृष्टिकोणसे जलकी रचना हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजनके योगसे हुई। सूर्यमें बाहर हाइड्रोजन एवं अन्दर हीलियमका

दहन हो रहा है। स्पष्ट है कि हाइड्रोजन अग्नि और जल

दोनोंके लिये काम आती है। भगवान् सूर्यके उदय होने और अस्त होनेपर

अप्की स्थितिमें परिवर्तन होता है। स्मरण रहे कि देववाणी वेद श्रुतिका साक्षात्कार करनेवाले ऋषियोंने

दावा किया कि उन्होंने सूर्यका चक्कर लगाया और अन्दर दहनशील धूम्रको देखा (वैज्ञानिक अभी सूर्यदेवकी

है—'ॐ या दिव्या आप: पयसा सम्बभूवुर्या

आन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः।' हम दिव्य अप् जलको सभी रसोंमें शामिल स्वीकारते हैं।

उस दिव्य जल—सूर्यलोक या द्युलोकके जल और अन्तरिक्ष जलके बारेमें पश्चिमी जगत्ने भ्रान्ति फैलायी।

द्युलोक और अनेक सूर्योंकी वैदिक अवधारणाको पश्चिमने लगातार नकारा, प्रकारान्तरसे स्वीकार किया। वैदिक विज्ञानके

अनुसार सूर्योदयके समय सूर्यकी किरणोंके तेजके कारण ब्रह्माण्डका अप् अपनी जगहसे हटनेको विवश होता है।

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि आकाशमें ब्रह्माण्डोंकी अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। इस सीमापर एक सूर्यकी किरणोंका तेज खत्म होता है और दूसरे सूर्यका शुरू होता है। इस

सीमान्तपर सूर्यकी शक्ति एवं तेज बहुत ही क्षीण कमजोर होता है। यहाँ अप् एकत्र होने लगता है। यह ब्रह्माण्डका दिव्य जल-दिव्य अप् है। हमारी पृथ्वीपर भी ध्रुवक्षेत्रमें

अप् घनीभूत होकर हिमका स्वरूप लेता है। स्मृतियोंमें रचियताओंने सृष्टिको गोपनीय रखते हुए 'ब्रह्माण्डकी गंगा'

का रहस्योद्घाटन किया। इसीसे प्रेरित होकर 'आकाशगंगा' का उद्घोष हुआ। वैज्ञानिक रूपसे देखें तो अन्तरिक्षमें एकत्र जल

अपने भारसे नीचे पृथ्वीकी ओर आया। 'यह सूर्य-लोकका दिव्यजल पवित्र, दिव्यपर्वत सुमेरुपर प्रवाहित

हुआ।' यही 'गंगा' कहलाया। इसे वामन-अवतार, वराह-अवतार आदिकी कथाओंमें पिरोया गया। यह

परिक्रमा लगानेमें सफल नहीं हो पा रहे हैं। वैदिक र Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

वेदोंके अनुसार ब्रह्माण्डका दिव्य अप्—गंगा संख्या ३ ]

दिव्यद्रष्टा ऋषियोंने गंगाके भीतरसे अदृश्य दिव्यगुणोंको उद्घाटित किया (यद्यपि सांकेतिक प्रतीकात्मक कृटरूपमें ही)। उन्होंने गंगाके द्युलोकसे सम्बन्धोंकी बारीकियोंको जाना—'इदमापः प्र वहत यत्किञ्च दुरितं मयि। यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उतानृतम्॥' (ऋग्वेद

१।२३।२२) जगत्की आत्मा सूर्य सवितादेवकी किरणोंमें अप्की उपस्थितिका रहस्य ऐतरेय ब्राह्मणमें 'मारीचि' शब्दसे किया। स्पष्ट है कि वेदमें अप्का एक रूप मारीचि कहा गया। वैदिक ऋषियोंकी स्पष्ट मान्यता थी कि यह समूचे ब्रह्माण्डोंमें फैला हुआ है (चाहे धूम्र-गैसरूपमें

ही हो)। यही कारण है कि वेदके ऋषि दिव्यजलवाली पवित्र नदियोंकी स्तुति करते हैं—'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या

मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥' (ऋग्वेद १०।७५।५) यह आकाशीय अप् या श्रीजल रोग, शोक, ताप, और मन-कर्म-वचनके पापोंको हरनेवाला

है। सूर्यलोकसे आया जल पृथ्वीपर दिव्य चमत्कारी ओषधीय शक्तियोंसे सम्पन्न है। इसकी दिव्यता ही इसे वर्षोंतक सड़ने नहीं देती है। काकभुशुण्डि और वाल्मीिकने

गंगाकी दिव्यताका गान किया। कथानकोंमें स्वर्गलोकसे

सदाशिवकी

जटाओं सुमेरुपर्वतकी एवं चट्टानोंसे टकराती गंगाका भव्य वर्णन वाल्मीकिने किया—'ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लि-

मुल्लासयन्ती स्वर्लीकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्ड-शैलात्स्खलन्ती।' अन्तरिक्षमें ही सूर्यिकरणोंसे दिव्यनदी यमुनाकी उत्पत्ति कही गयी। यमुनाको सूर्यदेवकी तनया

(सुपुत्री)-के नामसे अभिहित किया गया। स्मृतिग्रन्थोंके अनुसार हजारों वर्ष दिव्य अपृ धुम्र अथवा

दूसरे रूपमें आकाशमें मौजूद रहा। उसके बाद ही अप् जल द्रवके रूपमें आया। श्रीविष्णुपुराणमें गंगाके वामनके पैरसे निकलनेका आख्यान है। वामनावतारकी कथाके

वराह भी हैं। श्रीरुद्रका एक नाम दिवोवराह है। वेदके मर्ममें जानेसे नये रहस्य उद्घाटित होते हैं। वामनभगवान्के

पदसे ब्रह्माण्डका सीमान्तक्षेत्र टूटा। इस सीमान्तक्षेत्रसे घनीभृत अप् दिव्य जलधारा बह निकली। यही सुमेरुपर्वतपर बह चली। आध्यात्मिक भाषामें विष्णुका पैर 'सप्तऋषि प्रदेश' है। सदाशिवका एक नाम व्योमकेश है। महाभारतके

शतं वर्षसहस्राणां शिरसैव पिनाकधृक्।' अर्थात् जिन्हें अपने ऊपर धारण करना पर्वतोंके लिये भी कठिन था, उन्हीं गंगाको पिनाकधारी भगवान् शिव एक लाख

भीष्मपर्व (६। ३०-३१)-में जम्बूखण्ड-निर्माणपर्वमें वर्णन

मिलता है—'तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरिप।।

वर्षोंतक अपने मस्तकपर ही धारण किये रहे। श्रीमद्भागवतमें भी गंगाके विष्णुके वामपदसे प्रवाहित होनेका ब्योरा है। मन्त्रोंमें उल्लेख है—'अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्त-र्विश्वानि भेषजा। अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च

विश्वभेषजी:॥' (ऋग्वेद १।२३।२०) मन्त्र बताता है कि अप्में विद्यमान सोममें सभी ओषधियाँ हैं। साथ ही अप्में अग्नि है। स्वाभाविक रूपसे अप्में सोम और

अग्नि दो तत्त्व हैं। ब्रह्माण्डके दिव्यजलमें आधिदैविक शक्तिवाला सोम और दिव्यशक्ति-सम्पन्न अग्नि है। यह

दिव्यजल सूर्यलोकके अलावा महर्लोक और जनलोकमें भी उपलब्ध है। सारसंक्षेपमें वैदिक ग्रन्थोंमें वर्णित दिव्यजल

गंगाके रूपमें है और वह कल्याणपरक है।

गंगा, कर्णवास तथा काका हाथरसी

## ( श्रीकैलाश पंकजजी श्रीवास्तव )

पद्मश्री काका हाथरसीसे हास्य-सम्राट्के रूपमें बीमारी नहीं लगी; क्योंकि कडवे नीमके पत्तोंको डॉक्टर,

वैद्य एंटीसेप्टिक मानते हैं। रास्तेभर गंगाजीके भजन

लगभग सभी हिन्दी भाषा-भाषी व्यक्ति परिचित होंगे, नारी-कण्ठोंसे प्रवाहित होकर यात्राको सुखद बना रहे

किंतु गंगाके प्रति उनकी निष्ठा कितनी गहन थी, इससे थे। बीचमें कोई छोटा बच्चा रोता भी था तो उसकी

कदाचित् अधिक व्यक्ति अवगत नहीं होंगे। काकाजीके अनुसार गंगाके पवित्र जलमें एक आवाज भजनोंमें लीन हो जाती थी। गंगाजी पहुँचकर

विशेष प्रकारका गुण एवं आकर्षण है, जो हमारे तन-मनको मोह लेता है। कहते हैं गंगाजलमें ऐसा औषधीय

गुण है, जो हर प्रकारके रोगोंको नष्ट करनेकी क्षमता रखता है। हमारे देशमें गंगा प्राणवाहिनी हैं। जन-

जीवनमें गंगाके प्रति जो अट्ट आस्था विद्यमान है,

उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम ही होगी।

गंगाके प्रति ऐसी निष्ठा काकाजीमें मात्र वैचारिक स्तरपर ही नहीं थी, अपितु वास्तविक जीवनमें भी उनकी

गंगाभक्तिका जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वह नितान्त अनुपम है। इसका श्रीगणेश मात्र छ: वर्षकी अवस्थामें ही हो गया था, जब उन्होंने सोरों (शूकर-क्षेत्र)-में

पहली बार गंगादर्शन तथा स्नानका पुण्यलाभ किया। इस प्रसंगका रोचक वर्णन उन्हींके शब्दोंमें प्रस्तुत है-'सन् १९१२ ई० में मैं दाऊजी (बलदेव, जो मथुरा

जिलामें स्थित है)-में अपने मौसाके घर अपनी माताजीके साथ गरीबीके दिन काट रहा था। दाऊजीसे सोरों गंगा-स्नानके लिये मोहल्लेकी महिलाओंने योजना बनायी।

लगभग तीस नर-नारी और बच्चे एक ऊँट-गाड़ीमें ठूँस दिये गये। उनमें अपनी अम्माके साथ मैं भी था। पूरी ऊँटगाड़ी जो कि दो-मंजिली थी, आवागमनसहित तीस

रुपयेमें तय हुई। बड़ोंसे दो-दो रुपये और बच्चोंसे एक-एक रुपया!' रात्रिके आठ बजे यह ऊँटगाड़ी बलदेवसे सोरोंके

लिये रवाना हुई। दूसरे दिन दस बजे सोरोंकी गंगाजीपर हम सब पहुँच गये। रातमें जब ऊँटगाड़ी चल रही थी तो हमारे पास

ही ऊँटका भोज्य पदार्थ नीमके पत्ते भरे हुए थे। उनसे

यह भी लाभ हुआ कि किसी-को-किसीकी छूतकी

िभाग ९०

पहले सब यात्री नित्यक्रियासे निवृत्त हुए। फिर गंगाजीमें डुबकी लगायी तो यात्राकी सब थकान छू-मन्तर हो

गयी। सभी यात्री अपने-अपने घरोंसे टोसा (पूरी-पराठे) आम और मिर्चके अचारके साथ ले आये थे। रातमें भी खाते रहे, फिर सुबहके नाश्तेमें भी बासी भोज्य सामग्रीने हमारा साथ दिया। लौटते समय वहाँसे गंगारज

और इलायचीदाने लेकर उसी ऊँटगाड़ीमें बैठकर पुनः दूसरे दिन बलदेव आ गये। मोहल्लेके अड्रोसी-पड़ोसियोंको एक-एक टुकड़ा गंगारज (गंगा माटी)

और दस-बीस इलायचीके दाने बाँटकर गंगाप्रसाद वितरित करनेका पुण्य भी प्राप्त कर लिया।' सोरोंकी इस गंगा-यात्राने काका हाथरसीके बाल-मनमें जो बीज बो दिया था, बादमें वह कर्णवासकी

गंगा-यात्राके रूपमें पनपा। यह स्थान उत्तर प्रदेशके जिला बुलन्दशहरमें नरौराके पास है। यहाँ जानेका क्रम काकाजीने लगभग सन् १९३५-३६ ई०में प्रारम्भ किया, जो सन् १९८९ ई०में उनके दिवंगत होनेसे चार-पाँच

वर्ष पूर्वतक चलता रहा। प्रत्येक वर्ष मईका महीना कर्णवास-प्रवासहेतु निर्धारित रहता था। सपरिवार कविता-पाठ, रिकार्डिंग आदिके सिलसिलेमें काकाजी भारत तथा विदेशोंमें भी भ्रमण करते रहते थे, किंतु मईके महीनेमें कर्णवास-प्रवासके क्रममें कभी कोई व्यवधान नहीं

आया। अन्ततोगत्वा जब शरीर इस योग्य नहीं रहा, तभी लगभग ५० वर्षोंके इस निर्बाध क्रमको विराम देना पडा। प्रारम्भके वर्षींमें हाथरससे कर्णवासकी यात्रा भी

सुगम नहीं थी। इसके लिये हाथरस किला रेलवे स्टेशनसे अद्धा गाड़ी (छ: बोगियोंकी रेलगाड़ी)-द्वारा

हाथरस जंक्शन स्टेशन पहुँचते थे। वहाँ इलाहाबादसे

|   | था काका हाथरसी २५                                      |
|---|--|
| <u> </u>  |  |
| आनेवाली गाड़ीकी प्रतीक्षा करते थे, जो रातको लगभग          | गंगा-स्नानके बाद पुरुषवर्ग गंगा-किनारेसे रेती          |
| बारह बजे आती थी। उस गाड़ीसे रातके लगभग ढाई                | (बालू) लाकर, उसपर कण्डोंकी आग जलाकर दाल-               |
| बजे राजघाट स्टेशन पहुँचते थे। चटाइयाँ बिछाकर वहीं         | बाटी और चूरमा बनाकर, गंगाजीका भोग लगाकर खाते           |
| प्लेटफार्मपर सो जाया जाता था। कुछ-कुछ उजाला               | हैं तो ५६ भोग ३६ व्यंजन उसके सामने फीके लगते           |
| होनेपर काकाजी अपने पुत्रके साथ स्टेशनसे बाहर              | हैं। गंगाजलमें हाजमा-शक्ति गजबकी होती है। भर-          |
| निकलकर आगेकी यात्राके लिये कोई बैलगाड़ी तय                | पेट दाल-बाटी खानेपर भी उदरमें कोई भारीपन महसूस         |
| करते थे। महिलाओं और सामानको बैलगाड़ीमें व्यवस्थित         | नहीं होता। वहाँ पहुँचते ही खुलकर भूख लगती है और        |
| किया जाता था। शेष सदस्य साथमें पैदल चलते थे।              | अच्छी भूख लगनेपर भोजन भी स्वादिष्ट लगता है।            |
| सामान भी कोई कम नहीं होता था। पूरे परिवारके लिये          | पेटके सभी विकार दूर हो जाते हैं। मैं सारे भारतमें घूम  |
| एक माहका राशन, खाना बनानेके बर्तन, पुस्तकें आदि           | चुका हूँ, लेकिन ऐसा आनन्ददायक और स्वास्थ्यवर्धक        |
| काकाजीका चित्रकारीका सामान, बेटेके लिये क्रिकेटका         | स्थान मैंने दूसरा नहीं देखा। कर्णवाससे ४-५ मीलके       |
| सामान भी, कुल मिलाकर कोई १०-१२ अदद हो जाते                | क्षेत्रमें ऐसा सुखद स्फूर्तिदायक वायुमण्डल रहता है, जो |
| थे। साथमें एक सेवक भी रहता था। राजघाटसे                   | वहाँ जानेपर ही अनुभव किया जा सकता है।                  |
| कर्णवासतक लगभग २ मीलका मार्ग उस समय कच्चा                 | देवीजीके मन्दिरके अतिरिक्त वहाँ और भी कुछ              |
| ही था और कर्णवास तो लगभग जंगल ही था। रात्रिमें            | छोटे-मोटे मन्दिर थे। गंगातटस्थित यह कर्णवास अपने       |
| प्रकाशके लिये लालटेन और ढिबरीका ही सहारा था।              | शान्त और निर्मल वातावरणके कारण अनेक सन्तोंकी           |
| पानीके लिये एकाध कुएँ थे और गंगाजल तो था ही।              | तपस्थली रहा है। उड़ीसासे स्वामी पूर्णानन्द तथा बंगाल   |
| जनश्रुतिके अनुसार राजा कर्णने यहाँ रहकर                   | से स्वामी निर्मलानन्द दोनोंने यहाँ आकर साधना–तपस्या    |
| तपस्या की थी। इसीलिये इसका नाम कर्णवास हो गया।            | में काफी समय व्यतीत किया था। क्रमश: उड़िया बाबा        |
| यहाँ देवीजीका एक प्राचीन मन्दिर है। इन्हें कर्णकी         | एवं बंगाली बाबाके नामोंसे विख्यात ये सन्तद्वय स्थानीय  |
| आराध्या देवी बताया जाता है। इस मन्दिरकी बड़ी              | परम्परामें राधा-कृष्णकी जोड़ीके नामसे जाने जाते थे।    |
| मान्यता है। वैसे तो स्नानार्थी तथा दर्शनार्थी वर्षभर यहाँ | कुछ काल पश्चात् उड़ियाबाबाने वृन्दावनमें अपना          |
| आते रहते हैं, किंतु प्रत्येक वर्ष गंगादशहराके दिन यहाँ    | आश्रम बना लिया था, किंतु बंगाली बाबा कर्णवासमें ही     |
| मेला लगता है। स्थानीय लोग इसे 'लक्खी मेला' कहते           | साधनारत रहे।   |
| हैं; क्योंकि इसमें लाखोंकी भीड़ जुटती है। काका            | उन्हीं दिनों ग्रीष्मकालीन प्रवासहेतु कलकत्ताकी         |
| हाथरसी इस मेलेके सम्बन्धमें लिखते हैं—                    | एक धर्मनिष्ठ महिला रम्पाबाईका कर्णवास आगमन             |
| इसमें झूला, सर्कस, खेल, तमाशे यात्रियोंका                 | हुआ। रम्पाबाई मूलत: राजस्थानकी थीं तथा बाल             |
| मनोरंजन करते हैं। एक दिन पहलेसे ही बैलगाड़ियोंकी          | विधवा थीं। कलकत्तामें इनकी विशाल सम्पत्ति थी।          |
| लाइन निकटके गाँवोंसे आनी आरम्भ हो जाती है।                | कर्णवासमें बंगाली बाबासे भेंट होनेपर उनसे प्रभावित     |
| बैलोंके गलेमें लटकी घंटियाँ बैलोंकी चालके साथ बजने        | होकर ये उनकी शिष्या बन गयीं। अपनी सम्पत्ति बेचकर       |
| लगती हैं तो सुखद संगीतका आनन्द प्राप्त होता है।           | उन्होंने कर्णवासमें जमीन लेकर देवत्रयमन्दिर नामसे एक   |
| ग्रामीण महिलाओंके झुण्ड-के-झुण्ड लोकगीत एवं               | भव्य मन्दिरका निर्माण कराया। सन्त-महात्माओंके लिये     |
| गंगाके भजन गाते हुए फूल और जौ जमीनपर बिखेरते              | विशेष कुटियाँ एवं तीर्थयात्रियोंके लिये भवन बनवाये।    |
| हुए जीवन धन्य करते हैं।                                   | सदाव्रतके संचालनहेतु रसोईगृहकी व्यवस्था भी की।         |

भाग ९० \* बंगाली बाबाकी प्रेरणासे रम्पाबाईने सम्पूर्ण देवत्रयमन्दिर-थे। लगभग एक घंटा गंगामें तैरते तथा स्नान करते थे। फिर मन्दिरमें पूजा-अर्चना करते। इन सब गतिविधियोंमें परिसर देवार्पण कर दिया। इसके सुचारु संचालन तथा व्यवस्थाहेतु एक ट्रस्ट गठित कर दिया गया था। पुत्र लक्ष्मीनारायण उनके साथ रहता था। दोपहरमें काका हाथरसीके अग्रज भजनलाल गर्ग (काकाजीका भोजन तथा विश्रामके पश्चात् लगभग दो घंटे चित्र वास्तविक नाम प्रभुलाल गर्ग था।) अत्यन्त धर्मप्राण बनानेमें व्यतीत होते थे। हास्यकवि होनेके साथ ही वे व्यक्ति थे तथा इन्हीं बंगाली बाबाके शिष्य थे। प्रत्येक एक कुशल चित्रकार भी थे, उनके बनाये वीणावादिनी गुरुपूर्णिमाको वे हाथरससे कर्णवास अपने गुरुके दर्शनहेत् सरस्वती तथा अनेक शास्त्रीय संगीत कलाकारोंके अवश्य जाते थे। रम्पाबाईसे उनका अच्छा परिचय था। तैलचित्र आज भी संगीत कार्यालय, हाथरसकी दीवारोंको इसी माध्यमसे काका भी रम्पाबाई से परिचित हो गये। सुशोभित कर रहे हैं। यहाँ कर्णवासमें ही उन्होंने नल-वैसे वे स्वयं भी बंगाली बाबाके भक्त थे। उनके पुत्र डॉ० दमयन्ती, सावित्री-सत्यवान् आदि अनेक पौराणिक लक्ष्मीनारायण गर्गने तो बंगाली बाबासे दीक्षा भी ली थी। चरित्रों तथा प्रसंगोंके तैलचित्र बनाये। स्वामी निर्मलानन्द इस प्रकार कर्णवास-प्रवासमें काका हाथरसी देवत्रयमन्दिरमें जो देवत्रयमन्दिर-परिसर-स्थित कुटियामें रहते थे, उन्होंने ही ठहरा करते थे। रम्पाबाईका काकाजीपर विशेष स्नेह काकाजीसे देवत्रयका एक चित्र बनानेका अनुरोध था। वे उन्हें पुत्रवत् मानती थीं। देवत्रय ट्रस्टमें काकाजी किया। उनकी इच्छा थी कि इस चित्रमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों शास्त्रोक्त विवरणानुसार चित्रित हों, जिससे भी एक सदस्य थे। इस ट्रस्टने कर्णवासमें अनेक जनस्विधाएँ उपलब्ध करायी थीं। एक नि:शुल्क कि देवत्रयमन्दिरमें उसे पूजाहेतु प्रतिष्ठित किया जा चिकित्सालय भी प्रारम्भ किया गया, जिसके अन्तर्गत सके। काकाजीने वैसा ही किया तथा स्वामीजीने उस प्रसृतिकेन्द्र भी संचालित किया गया, जिससे निकटवर्ती चित्रको मन्दिरमें लगवा दिया पूजार्थ! रम्पाबाईके अनुरोधपर ग्रामीण महिलाओंको सुविधा प्राप्त हो सके। इस केन्द्रमें उन्होंने उनके कक्षकी दीवारपर जटायु-वधका प्रसंग अनेक निष्काम कर्मयोगी चिकित्सक अपनी सेवाएँ प्रदान चित्रित किया था। कई सन्त, महात्माओं के भी चित्र करते थे। देवत्रय दातव्य अस्पताल नामसे इसका साइन कर्णवासमें उन्होंने बनाये। उड़िया बाबाके भक्तोंके अनुरोधपर उन्होंने उनके अनेक चित्र बनाकर उन बोर्ड स्वयं काकाजीने ही पेंट किया था। भक्तोंको भेंट किये थे। सन्ध्या-समय गंगाकिनारे टहलना, रम्पाबाईके देहान्तके पश्चात् यह स्थान अन्य साधुओंके हाथमें चला गया। कुछ वर्षों पश्चात् दिल्लीकी ज्योतिर्मयी मन्दिरकी आरतीमें भाग लेना ये उनके दैनिक कार्यक्रम मॉॅंने जब देवत्रय मन्दिरकी दुर्दशा देखी तो इसका संचालन थे। रात्रिके समय गंगाकिनारे बाँसुरी बजानेमें उन्हें विशेष अपने हाथमें ले लिया। वे भी स्वामी निर्मलानन्द (बंगाली आनन्द आता था। साथ आये बेटेका अधिकांश समय बाबा)-की शिष्या थीं। इन्होंने इसके सुधार तथा विकासहेतु विभिन्न साधु-सन्तोंके साहचर्यमें ही व्यतीत होता था। लाखों रुपये भी व्यय किये तथा कुछ नये मन्दिर भी बनवाये। उन दिनों कर्णवासमें स्वामी स्वरूपानन्द, स्वामी गंगातटस्थित शिवके मुख्य मन्दिरसहित द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके दिव्यानन्द, नारायण स्वामी (दण्डी स्वामी), स्वामी मन्दिरोंकी जिस दिन प्राणप्रतिष्ठा हुई, उसके अगले दिन स्वतन्त्रानन्द (बादमें कैलास आश्रम ऋषिकेशके महामण्डलेश्वर), स्वामी गंगेश्वरानन्द प्रज्ञाचक्षु प्रभृति काकाजीने नये घड़ेमें गंगाजल भरवाकर इन सभी मन्दिरोंमें अनेक महान् सन्त-महात्मा साधनारत थे। इसके अतिरिक्त जाकर जल चढ़ाया तथा पूजा की। कर्णवासके एक मासके प्रवासमें काकाजी सबेरे स्वामी निर्मलानन्द (बंगाली बाबा)-के दर्शनार्थ माँ ुHinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha ४-५ बेर्ज उठकर गंगाकिनार टहलते थे, व्यायाम अरते आनन्दमयी, स्वामी प्रबाधानन्द, महान् विद्वान् अखण्डानन्द

गंगा, कर्णवास तथा काका हाथरसी संख्या ३ ] महाराज-जैसी आध्यात्मिक विभूतियोंका कर्णवास-आगमन करते हैं। स्वामी स्वतन्त्रानन्दजीका मानना था कि गंगोत्रीसे होता रहता था। कर्णवासमें ४० वर्षोंसे शिवमन्दिरमें तपस्यारत. गंगासागरपर्यन्त ऐसा निर्मल गंगाजल उन्होंने कहीं नहीं शिवको अपना गुरु माननेवाले स्वामी निर्मलानन्दकी पाया। काकाजी तो एक मासके प्रवासभर गंगाजल ही गंगामें अट्ट श्रद्धा थी। एक बार खुर्जासे एक महिला पीते तथा उसीमें बना भोजन ग्रहण करते थे। कर्णवासकी अपने पति सेठ गंगासहायको लेकर उनकी शरणमें गंगा उनके मन-मस्तिष्कमें ऐसी रच-बस गयी थीं कि आयी। उसके पति मधुमेहसे ग्रसित हो मृत्युके कगारपर उनके अन्तिम इच्छानुसार मृत्यूपरान्त उनकी अस्थियाँ पहुँच चुके थे। बाबाने उसे गंगा मैयासे प्रार्थना करनेको कर्णवासकी गंगामें ही प्रवाहित की गयीं। कहा। गंगाजीकी कुछ ऐसी कृपा हुई कि मरणासन्न कर्णवासकी गंगा आज भी काका हाथरसीके सेठजीको एक ही दिनमें स्वास्थ्यलाभ हो गया। काव्यमें प्रवाहित हो रही हैं-कर्णवाससे कुछ दूर एक महिला रहती थी, जिसके ज्येष्ठ मास में यहाँ दशहरा मेला लगता विषयमें यह प्रचलित था कि उसने विगत ३० वर्षोंसे भी अति पवित्र इस तपोभूमि का कोना कोना। कर्णवास में राजा कर्ण वास करते थे अधिक समयसे भोजन त्याग रखा था तथा वह केवल गंगाजल ही ग्रहण करती थी। स्थानीय लोगोंसे यह दान दिया करते थे नित्य सवा मन सोना॥ जाननेपर काकाजीने उसके दर्शनार्थ जानेका विचार देवी के दर्शन को नित्य भक्त जन आते किया। किंतु इसके पूर्व ही वह महिला स्वयं वहाँ आ उसकी छाया में शिशु का मुंडन करवाते। गयी, जहाँ काकाजी ठहरे थे। उसने बताया कि जब उसे फूल-बताशे और नारियल अर्पण करते ज्ञात हुआ कि काका हाथरसी कर्णवास आये हुए हैं, मन ही मन निज मनोकामना कहते जाते॥ तो वह उनसे भेंट करने आ गयी। मेले में नर-नारी ग्रामीणों की टोली कर्णवासके निकटवर्ती जनमानसमें गंगाके लिये हरा घाघरा, लाल दुपट्टा, पीली चोली। असीम श्रद्धा, अडिग विश्वास था। आस-पासके गाँवोंमें लोकगीत मीठे–मीठे गातीं ललनाएँ यदि किसीके यहाँ बच्चे जीवित नहीं रहते थे तो वे व्यक्ति दौड़ रहे गाड़ी, रब्बा, रथ और मझोली॥ इसके निवारणहेतु छोटे बच्चोंको 'गंगामें सिराने' के लिये गंगा के कण-कण में ग्रामीणों की श्रद्धा लाते थे। गाजे-बाजे, ढोल-ताशेसहित नाते-रिश्तेदारोंके शूल-फूल में माटी-धूल, डाल-पत्ते में। साथ बच्चेका पिता उसे कन्धेपर बैठाये या गोदमें लिये लोक कला का ऐसा अद्भुत दृश्य किसीको आता था। पिताद्वारा उसे गंगाजीमें छोड़ दिया जाता था मिल सकता है भला बम्बई कलकत्ते में॥ तथा पुजारी या पण्डेद्वारा उसे तुरन्त गंगाजीसे निकालकर पतित-पावनी, तरिण-तारिणी, पाप-नाशिनी पिताको सौंप दिया जाता था। यह क्रिया दो-तीन बार मारें डुबकी 'हर हर गंगे' बोल रहे हैं। की जाती थी। इस प्रकार गंगाको अर्पित तथा गंगाप्रदत्त कोई बना रहे रेती में दाल-बाटियाँ वह बच्चा जीवित रह जाता था, ऐसी मान्यता थी। कोई गंगा-जल में सत्तू घोल रहे हैं॥ प्राचीन-देवी मन्दिरके आस-पास कई बार उत्खननमें द्वारा वंदित शास्त्रों गंगामाई कुछ कलश प्राप्त हुए हैं, जिनमें मुद्राएँ (सिक्के) तथा वाल्मीकि-तुलसी-रवीन्द्र ने महिमा गाई। बर्तनोंके अवशेष आदि प्राप्त हुए हैं, जो इस स्थलके उसकी गोदी में सब ही अवगाहन करते पुरातात्त्विक तथा ऐतिहासिक महत्त्वकी ओर इंगित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मुसलिम, ईसाई॥

चूड़ामणि ( श्रीजानकीजीकी मुँहदिखाई )

( आचार्य श्रीरामरंगजी )

वाद्योंकी ध्वनि ज्यों-ज्यों समीप आने लगी, त्यों-लजाकर रह गया था। कौसल्या-सुमित्रा-कैकेयी-तीनों

त्यों राजभवनकी गतिविधियोंमें भी तीव्रता आने लगी। महारानियोंके साथ परिचारिकाएँ मांगलिक-कलश, आरतियोंके थाल तो कोई अवसरके अनुकूल मांगलिक

आती भी क्यों नहीं; क्योंकि दो विश्वसनीय धावकोंने तीव्रगामी अश्वोंपर आकर यह समाचार जो दे दिया था

कि शिव-धनुष-भंगके कारण केवल ज्येष्ठ राजकुमार

रामका ही नहीं, अपितु जनकनन्दिनी सीताकी तीनों

अनुजाओंका विवाह भी रामके तीनों अनुजोंके साथ अत्यन्त आनन्दसे सम्पन्न हुआ है। अब चारों राजकुमार

अपनी नववधुओंके साथ आ रहे हैं। सोनेमें सुगन्ध-जैसा आनन्द तो तब आ गया कि जब विदित हुआ कि

विश्वभरमें क्षत्रियकुलद्रोहीके रूपमें विख्यात भार्गव

परशुराम श्रीरामको अपना वैष्णवी धनुष एवं कई अमोघ अस्त्र देकर तप करने चले गये। ऐसेमें प्रतीक्षाकी घड़ियाँ युगोंके समान न लगतीं तो

आश्चर्य होता। राजभवनकी हलचलसे अधिक हलचल तो राजभवनवासियोंके हृदयमें मच रही थी। अबतक जो

केवल महारानी कहलाती आ रही थीं, अब वे रानियोंकी

राजकुमार धीरे-धीरे बढ़ने लगे। राजकीय कक्षमें निर्धारित आसनोंपर उन्हें बैठा देखकर नरेश मुसकराते हुए ज्येष्ठ महारानी कौसल्यासे बोले—

सादर सस्नेह मुँहदिखाई करो। कृपणता त्यागकर, श्रेष्ठातिश्रेष्ठ जो तुमने हमसे छिपाकर रखा हुआ है, वह इन्हें भेंटकर इनकी अन्य व्यवस्था करो।' छिपानेकी बात सुनकर तीनों महारानियाँ अपनी तिरछी चितवनसे महाराजको देखती हुई वधुओंकी ओर

बढ़ी ही थीं कि महाराज दशरथ हँसते हुए पुन: बोले, 'हाँ–हाँ, सर्वप्रथम महारानी कौसल्या अपना पिटारा खोलेंगी।' महारानी कौसल्या अपने पीछे आती हुई कैकेयीका हाथ पकड़कर, उन्हें आगे बढ़ाती हुई बोलीं, 'प्रथम मुँहदिखाई मेरी प्रिय अनुजा तुम करो।'

द्रव्य ले-लेकर राजद्वारकी ओर बढ़ने लगीं। कुछ ही

समयमें राजगुरु महर्षि वसिष्ठके साथ अयोध्यानरेश

महाराजा दशरथका भव्य रथ राजद्वारपर आ पहुँचा।

पुष्पवर्षाके मध्य राजगुरु नरेशसहित राजभवनमें प्रविष्ट हो गये। द्वारपर परिछन-आरती एवं अपनी-अपनी

नववधुओंके साथ गठजोडोंको सम्हालते हुए चारों

'देखो, ये बालिका वधुएँ किस प्रकार सिमटी-सी

सकुचाती हुई-सी बैठी हैं। यात्रासे श्रमित भी हैं। इनकी

संकोचमें घिरी हुई महारानी कैकेयी बोलीं, 'जीजी! यह आप क्या कह रही हैं, वरिष्ठातिवरिष्ठासे पूर्व कनिष्ठातिकनिष्ठा, नहीं-नहीं। प्रथम अधिकार आपका है।'

'अच्छा, कनिष्ठा होकर वरिष्ठाको आदेश दे रही है कि उपदेश कर रही है? अथवा सबके मध्यसे इस वरिष्ठा कहलानेवालीको विक्षिप्ता सिद्ध करनेके षड्यन्त्रकी

सास कहलायेंगी। ऐसेमें उन जननियोंके आनन्दोन्मादका वर्णन करनेमें शब्दकोश अधूरा क्या कोश कहलानेमें ही

| संख्या ३] चूड़ा  | मणि २९  |
|--|---|
| <b>5555555555555555555555555555555555555</b>           | **************************************                |
| भूमिकाकी रचना करने जा रही है।'                         | निवास करे तो क्या अन्याय नहीं होगा? अब उस             |
| 'शिव–शिव, जीजी! आप अपनी अनुजापर एकाएक                  | कनकभवनको कनकांगी स्वामिनी आ गयी तो उसकी               |
| ऐसा भीषण आरोप लगा देंगी, इसकी तो मैं स्वप्नमें भी      | रक्षिकाको उसे समर्पित कर देना ही धर्म है। मैंने उसीका |
| कल्पना नहीं कर सकती।'                                  | निर्वाह इस आशा-आकांक्षासे किया है कि कल मैथिली        |
| 'अब स्वप्नकी जागृतिकी बात कर, कल्पना नहीं              | भी अपनी वधूको इसी प्रकार इसे साशिष प्रदान करे।'       |
| यथार्थका निर्वाह कर। मेरी प्रिय अनुजे! वरिष्ठोंको      | चरण-वन्दना करती हुई जनकनन्दिनीको अनेकानेक             |
| वरिष्ठ बना रहने दे। उन्हें वरिष्ठताके दम्भमें बौरा मत। | आशीर्वाद देती हुई महारानी कैकेयी लौट गर्यीं। महाराजके |
| चल, जो अपने इन महाराजासे छिपाकर रखा है, वह             | पुनः संकेतपर महारानी कौसल्याने अब हाथ पकड़कर          |
| वधूको देकर इनके भ्रम-भूतका उद्धार कर।'                 | महारानी सुमित्राको बढ़ा दिया। जन-जनकी उत्सुकताको      |
| कैकेयी कौसल्याका एक सुस्नेहिल धौल खाकर,                | बढ़ाते हुए सुमित्रा बढ़ चलीं। कनकभवनके पश्चात् अब     |
| अपने संकोचसे वधुओंके संकोचको संकुचित करते हुए          | अयोध्यामें ऐसी कौन-सी अमूल्य कि बहुमूल्य वस्तु रह     |
| बढ़ीं। इस समय वे समस्त समुपस्थित परिकरके निर्निमेष     | गयी है, जिसे महारानी सुमित्रा भेंटकर महारानी कैकेयीसे |
| नेत्रोंका केन्द्र जो सहसा बन गयी थीं। सभीकी उत्सुकता   | अधिक सुयशकी पात्रा स्वयंको सिद्ध करनेमें सक्षम        |
| चरम सीमापर थी कि देखें, किनष्ठ महारानी क्या देंगी?     | सिद्ध होंगी ?   |
| कैकेयीने धीरेसे ज्यों ही जानकीका अवगुण्ठन सरकाया,      | महारानी सुमित्रा बढ़कर जानकीके सामने जा               |
| उनके नेत्र सौन्दर्य-सिन्धुकी सीमा-जैसे उस उत्फुल्ल     | बैठीं। तनिक-सा अवगुण्ठन हटाकर मुख देखते ही, एक        |
| सहस्रदलकमलके सुगन्धाकुल भ्रमर बनकर रह गये।             | बार तो कैकेयीके समान भाव-समाधिमें जानेको बाध्य        |
| विदेहनन्दिनीके मुखमण्डलने विदेहराजकी सम्बन्धिनीको      | होते-होते उन्होंने स्वयंको सम्हाल लिया। धीरेसे अपने   |
| किसी अश्रुत सम्मोहनमन्त्रके अलौकिक प्रभावसे विदेही     | जूड़ेसे निकालकर चूड़ामणि जानकीके जूड़ेमें लगाकर       |
| बना दिया। उस समय कैकेयीकी दशा देखकर जन-                | लौट आयीं।   |
| जनको स्वाभाविक रूपसे यही प्रतीत होने लगा।              | 'चूड़ामणि, केवल चूड़ामणि मँझली महारानीने              |
| महारानीकी आनन्द-समाधि अनुभव करते हुए महाराज            | दी। रत्नमण्डित ललन्तिका (लम्बा हार) नहीं दी। कैसी     |
| हँसते हुए बोले, 'विदग्ध परिचारिकाओ! देखो, तुम्हारी     | कृपण हैं।' कहींसे ये शब्द धीरेसे कानोंमें आते ही      |
| मृगनयनी गजगामिनी महारानी विमूर्च्छित हो गयी।           | महर्षि वसिष्ठ बोल पड़े, 'अरे, चूड़ामणि, यह केवल       |
| प्रयत्नपूर्वक इन्हें चैतन्य करो।'                      | चूड़ामणि, नहीं। केवल अयोध्याके नहीं, विश्वभरके        |
| महाराजके व्यंजनात्मक शब्दोंका अर्थ 'विलम्ब'            | समस्त आभूषण मिलकर भी इस चूड़ामणिकी समानता             |
| मान्य करते हुए महारानी कैकेयीने अयोध्याके सुन्दरतम     | नहीं कर सकते। जो इसका इतिहास नहीं जानते, वे ही        |
| भवन कनकभवनकी रत्नजटित कुंजिगुच्छिका धीरेसे             | 'चूड़ामणि, केवल चूड़ामणि कह रहे हैं।' यह चूड़ामणि     |
| अपने आँचलसे खोलकर जानकीजीके आँचलमें बाँध               | समस्त विभूषण-मालाओंकी वह शिरोरत्न है, जिसकी           |
| दी। यह देखते ही भगवती अरुन्धती बोलीं, 'महारानी!        | समता केवल श्रीमन्नारायणकी हृदयभूषण कौस्तुभमणि         |
| अपना कनकभवन दे डाला। यह क्या…'                         | ही कर सकती है। इसका इतिहास सुनो—                      |
| 'महादेवि! महाराजने इस भवनका निर्माण कनिष्ठ             | 'देवों और दानवोंने अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र-       |
| महारानीके लिये कराया था। जिसे आशुतोष महादेवकी          | मन्थन जिस प्रकार किया, उस कथासे सभी परिचित हैं।       |
| अहैतुकी कृपा अब वरिष्ठा बना रही है, वह उसमें           | सर्वप्रथम कालकूट महाविष निकला, जिसे भगवान्            |

भाग ९० \$ शंकरने ग्रहणकर विश्वको भयमुक्त किया। उसके कैकेयीके साथ सदेह देवलोक पधारे। देवराजने उनका पश्चात् गजराज ऐरावत, उच्चैश्रवा अश्व, कामधेनु, अभिनन्दन करते हुए स्वर्गंगा मन्दािकनीके दिव्य हंसोंके पंख उन्हें भेंट किये। वे ही महाराजाने मिथिलामें कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, पांचजन्य, वारुणी-रम्भा आदिके क्रममें भगवती महालक्ष्मीसे पूर्व रंग-रूपमें उन्हींकी वरयात्राके समय अपने चारों राजकुमारोंकी कलगियोंमें समानता करनेवाली एक अपूर्व सुन्दरी रत्नाकरनन्दिनी सजाये। इसी अवसरपर देवराज्ञी इन्द्राणीने यह चूड़ामणि प्रकट हुई। श्रीहरिका अवलोकन करते ही वह हृदयसे महारानीको भेंट करते हुए कहा कि जिस नारीके केशपाशमें यह दिव्य चूड़ामणि रहेगी, उसका सौभाग्य उनके प्रति समर्पित हो गयी। इनसे अपने मनोभाव कैसे व्यक्त करूँ? संकोचमें भरी हुई, अभी वह यह विचार अक्षत-अक्षय-अखण्ड रहेगा। उसके स्वामीके राज्यमें कर ही रही थी कि इसी मध्य महालक्ष्मीका प्रादुर्भाव हो अकाल-अतिवृष्टिकी समस्याएँ नहीं आयेंगी। कोई शत्रु गया। उन कमलनयनी कमलासनाने बढ़कर अपने उनका पराभव नहीं कर सकेगा। करकमलोंमें धारण की हुई पंचकमल माला (श्वेत-'महारानी कैकेयीने अयोध्या आकर यह चूडामणि नील-पीत-अरुण-कर्बुरी) श्रीहरिको समर्पित कर डाली। ज्येष्ठ महारानीको समर्पित कर दी। उन्होंने यह विचारकर सागरराज रत्नाकरकी वे ज्येष्ठ सुता मन-ही-मन अकुलाकर कि कनिष्ठा कैकेयीको तो महाराजका सर्वाधिक स्नेह रह गयीं। मैं अपनी अनुजाके स्वामीके प्रति अपना प्राप्त हो रहा है। उसी प्रकार मुझे प्रजाका सम्मान मिल समर्पण कैसे करूँ, यह विचारकर वे खड़ी-की-खड़ी रहा है किंतु ये मध्यमा महारानी सुमित्रा तो रात-दिन रह गयीं। अन्तरकी जाननेवाले उस अन्तरार्पिताके निकट परिवारके प्रत्येक कर्ममें, उनकी सुख-सुविधाके ध्यानमें श्रीहरि स्वयं पहुँच गये। धीरेसे बोले-लगी रहती हैं। अत: इस चूड़ामणिकी वास्तविक 'मैं तुम्हारा भाव जानता हूँ। पृथ्वीको भार-निवृत्त अधिकारिणी ये ही हैं। इनका और हमारा सौभाग्य एक करनेके लिये जब-जब भी मैं अवतार ग्रहण करूँगा, मेरी ही है, दो नहीं—यह विचारकर इन्हें भेंट कर दी। अब संहारिणीशक्तिके रूपमें तुम्हारा भी अवतरण होगा। इन नववध् जनकनन्दिनीके सौभाग्यको ही वात्सल्यवश सम्पूर्णरूपेण तुम्हें कलियुगमें श्रीकल्किरूपमें अंगीकार अपना सौभाग्य मान्य करते हुए, यह शिरोरत्न चूडामणि करूँगा। अभी सत्ययुग है। तुम त्रेता-द्वापरमें त्रिकूटा-इन्हें भेंट की है। इसकी समानता करनेकी क्षमता विश्वभरके किसी भी आभूषणमें नहीं हो सकती। मझली शिखरपर वैष्णवी नामसे अपने अर्चकोंकी मनोकामनाकी महारानी देवी सुमित्रा कृपाकी मूर्ति हैं। इनपर कृपणताका पूर्ति करती हुई, तपस्या करो।' 'तपस्याके लिये विदा होते हुए, उन्होंने अपने आरोपण करना श्रीहरिकी कृपासे वंचित होना ही है।' महर्षि वसिष्ठके मौन होते ही महाराज दशरथ केशपाशसे निकालकर, विश्वकर्माद्वारा निर्मित, दिव्य-रत्नजटित यह चूडामणि जो उन्हें उनके पिताने उन्हें धीरेसे मुसकराते हुए महारानी कौसल्यासे बोले, 'तुमसे धराधामपर प्रकट होते समय दी थी, वह उन्होंने कनिष्ठ हमारी कोई अन्य महारानी हो तो उसका भी श्रीहरिको भेंट कर दी। अपने समीप खड़े देवराजकी अनुसन्धानकर उसे बढ़ाइये। उसके पश्चात् ही तो आपका मुँहदिखाईका वह मुहूर्त आयेगा, जिसकी लालायित दृष्टि देखकर, उन्होंने वह उन्हें दे दी। प्रसन्नचित्त देवराजने देवराज्ञीके जूड़ेमें उसे स्थापित कर प्रतीक्षा हमारे साथ-साथ समस्त समुपस्थित जन अपनी दिया। देवशत्रु शम्बरासुरका सम्मुख रणमें वधकर, अपने श्वासमालाको संयमित करते हुए कर रहे हैं।'  संख्या ३ ] चूड़ामणि धीरेसे बोलीं, 'ये दोनों तो मेरी अनुजा थीं, जो अपने कोई अन्य तो नहीं हो सकती। अपनी मनीषाका कार्यकी पूर्ति यशस्वितापूर्वक कर गर्यो। एक वरिष्ठा मन्थनकर यह दीन दशरथ यही कह सकता है।' अभी शेष है, जो विधिवत् मेरी सपत्नीकी भूमिका 'दीनानाथ! सत्य, परम सत्य' कहती हुई महारानी प्रारम्भसे कर रही है। उसे जब मुँहदिखाई करनी हो करे, कौसल्या जनकदुलारीकी ओर बढ़ चलीं। धीरेसे जानकीका मैं तो अभी…' छोटा-सा अवगुण्ठन उठाकर, हर्षातिरेकमें निकट खड़े रामका हाथ थामकर जानकीके हाथमें देते हुए बोलीं, 'ठहरो-ठहरो, अपनी वरिष्ठा सपत्नीसे हमें भी तो परिचित कराती जाओ। ताकि हम तुम्हारे पश्चात् उससे 'तुम्हारी दोनों सासोंकी समता करनेकी क्षमता तो मुझमें भी आग्रह कर सकें।' नहीं है। तुझ सुवर्णाको भेंट करनेके लिये यही श्यामला, 'आप उससे भली-भाँति परिचित हैं। अपरिचित जो मेरे अन्तस्तलका समग्र कोश है, वही तुझे भेंट कर बननेका स्वॉॅंग त्यागकर, मेरे मार्गकी बाधा बननेका रही हूँ। ले, इसे सम्हाल और मुझे पगछुईमें मुक्ति प्रदान प्रयत्न कृपापूर्वक मत कीजिये।' कर।' 'महारानी! हम सत्य कह रहे हैं। हम उसे नहीं —कहती हुई ज्यों ही महारानी लौटनेको हुई, जानकी उनके चरणोंमें लोट गयीं। सुस्नेहमय हाथ उनके जानते।' 'जो आपको बाहुपाशमें भरे, आपके मन-मस्तिष्क-शीशपर फेरते हुए वे स्वयंको संयमित करते हुए अपने हृदयपर, अष्ट प्रहरके पल-पल क्या विपल-विपलके आसनपर आकर, कोरोंतक आ गये जलके दो-दो सहस्रांशतकपर अधिकार किये बैठी हैं, आप उसे नहीं बिन्दुओंको छिटककर बैठ गयीं। इस अवसरपर समुपस्थित जानते ? इसके लिये आपको धन्य-धन्य कहनेके अतिरिक्त एक भी नर-नारी ऐसा नहीं दिख रहा था कि जिसके आप पृथ्वीपतिके चरणोंकी चेरी और कह भी क्या नेत्रोंकी सुस्थिर पुतली श्रीराम-जननी बने बिना न रह सकती है?' गयी हो। 'महारानी! आप दिखनेभरको सरल दिखती हैं 'बड़ी महारानी वास्तवमें बड़ी महारानी सिद्ध हो अन्यथा आप-जैसी कुटिल" नहीं तो प्रहेलिकाओंके गयीं' कहते हुए महर्षि वसिष्ठ देवी अरुन्धतीके साथ बाणोंसे अपने प्राणवल्लभके मर्मस्थानको बींधनेवाली अपने आश्रममें चले गये।\* बिल्लीका बच्चा सिर्फ इतना ही जानता है कि 'म्यावँ, म्यावँ' करके अपनी माताको किस प्रकार पुकारना चाहिये। फिर आगे क्या करना है, सो सब बिल्लीको मालूम रहता है। वह अपने बच्चोंको, जहाँ उसे अच्छा लगता है, ले जाकर रखती है। घड़ीभरमें रसोईघरमें, घड़ी ही भरमें मालिकके गुदगुदे बिछौनेपर!

हाँ, पर बिल्लीके बच्चेको सिर्फ इतना ज्ञान अवश्य होता है कि अपनी माँको कैसे पुकारूँ। इसी न्यायसे, मनुष्य जब अनन्य भावसे अपनी परम दयालु माता परमात्माकी पुकार करता है, तब वह तुरंत ही दौड़ता

हुआ आकर उसका योगक्षेम सँभालता है। सिर्फ पुकार करना ही उसका काम है! हाँ,—श्रीरामकृष्णजी परमहंस

\* (ज्ञात हो कि वन जाते समय जानकीजीने महारानी कैकेयीकी दी हुई काषाय साड़ी तो धारण कर ली थी, किंतु देवी अरुन्धती-महर्षि

विसष्ठ आदिने उन्हें आभूषण नहीं उतारने दिये थे। वे ही आभूषण हरणके समय वे स्थान-स्थानपर डालती हुई गयीं। उन्हींमेंके कुछ आभूषण सुग्रीवने श्रीरामको दिखाये थे। लंका पहुँचनेतक एकमात्र चूड़ामणि ही उनके पास शेष रही थी। उसका महत्त्व जाननेके कारण ही वह उन्होंने

कहीं नहीं डाली। यही चुडामणि जानकीजीने पहचानके निमित्त श्रीहनुमान्जीको दी; क्योंकि विश्वभरमें वह अद्वितीय थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी विचार किया कि जबतक यह प्रभुके पास नहीं जायगी, लंकाका विनाश नहीं होगा।)

योग : एक विश्लेषण

### (डॉ० श्रीइन्द्रमोहनजी झा 'सच्चन', पी-एच०डी० (आयुर्वेद), डिप्लोमा इन योग)

प्राचीन भारतमें मूलतः योगकी साधना आत्माको है।मोटे रूपमें यह जान लें कि योगके दो पक्ष हैं।क्रियाओं

प्राचीन भारतमें मूलतः योगकी साधना आत्माको है। मोटे रूपमें य परमात्मासे जोड़नेके लिये की जाती थी। इसीलिये इसका और आसनोंद्वार

नाम योग पड़ा। ईश्वर या ब्रह्मके साथ यह संयोग या जो हठयोग मिलन आत्म-साक्षात्कारके रूपमें होता है। यह मिलन साधनाका है

भौतिक दृष्टिमें दो वस्तुओंके संयोगके समान नहीं होता है; क्योंकि वेदान्त-दर्शनके अनुसार परमेश्वर या ब्रह्मके

ह; क्याक वदान्त-दरानक अनुसार परमश्वर या ब्रह्मक अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता ही नहीं है। मानव-मन उस एक ही अस्तित्वके प्रातिभासिक रूपको ही संसारकी विभिन्नताओंके रूपमें देखता है। संसारकी इन विभिन्नताओंके पश्चात् भी सभी वस्तुओंमें एक नितान्त

विभिन्नताओं के पश्चात् भी सभी वस्तुओं में एक नितान्त ईश्वरीय एकता वर्तमान है। इसीलिये योग आत्मज्ञानप्राप्तिका महान् साधन माना गया है। जो लोग योगको जीवात्मा-परमात्माके संयोगका साधन नहीं मानते, वे भी उसकी उपयोगिता स्वीकार करते हैं। उनकी मान्यताको यों समझ सकते हैं—किसी

करत है। उनका मान्यताका या समझ सकत है—ाकसा कटोरीमें जल डालकर उसमें सोनेका टुकड़ा डाल दिया जाय। वह नीचे डूब जायगा। यदि जल शुद्ध और निश्चल हो तो हम उस सोनेके टुकड़ेको देख सकते हैं, परंतु यदि उसमें मिट्टी मिली हो और वह हिल रहा हो तो सोना या तो दिखेगा ही नहीं या विकृतरूपमें दिखेगा। उसको देखनेके लिये ऐसा उपाय करना होगा कि जलकी मिट्टी

निकल न जाय तो कम-से-कम नीचे बैठ जाय और उसका हिलना बन्द हो जाय। आत्मा सोनेकी भाँति शुद्ध-बुद्ध-चैतन्य है, परंतु हम उसका सीधा साक्षात्कार नहीं करते, चित्त (मन)-के माध्यमसे करते हैं और चित्तकी वृत्तियों (पानीकी भाँति हिलने)-का निरोध ही योग है।

वृत्तियों (पानीकी भाँति हिलने)-का निरोध ही योग है। वस्तुत: योग न तो आसनों और प्राणायामोंकी ही प्रणाली है और न यह कोई दर्शनवाद ही है। ईश्वर-संयोग ही योग है। ईश्वरीय सायुज्यता ही सभी योगोंका

लक्ष्य है। योग ईश्वरकी ओर शनै:-शनै: दृढ़तापूर्वक अग्रसर करता है। अहंकार-विनाश तथा अमरानन्दकी प्राप्तिमें ही सारे योगोंकी परिसमाप्ति है। दत्तात्रेय योगशास्त्रमें प्राण एवं अपान, मन और प्राण

तथा जीवात्मा और परमात्माके मिलनको योग कहा गया

और आसनोंद्वारा शरीरको शुद्ध करना और स्वस्थ बनाना, जो हठयोग कहलाया। योगका दूसरा पक्ष आध्यात्मिक साधनाका है, जिसके प्रमुख अंग हैं—ध्यान, धारणा और

िभाग ९०

समाधि आदि। योगके इस दूसरे पक्षकी साधना सर्वसाधारणके वशकी चीज नहीं है; क्योंकि इसके लिये अपेक्षित है—बड़ी साधना, आत्मनियन्त्रण, त्याग-तपस्या आदि।शरीरको शुद्ध और स्वस्थ रखनेमें योगके हठयोगके

लाभदायक है, किंतु इसमें आध्यात्मिक गहराई नहीं है। योगशास्त्रमें स्वीकृत योग शब्दके अर्थको गहराईसे समझना होगा। योगदर्शनकार महर्षि पतंजलिके अनुसार योगका अर्थ है—चित्तको वृत्तियोंका निरोध। (यो० द० १।२) इस वाक्यमें चित्त, वृत्ति और निरोध तीन ऐसे

आसनोंका पक्ष बालक, युवक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सबके लिये

शब्द हैं, जिनको समझे बिना वाक्यका अर्थ नहीं लग

सकता। इसलिये इन तीनों शब्दोंका संक्षिप्त परिचय यहाँ

प्रस्तुत किया जा रहा है— चित्त (मन)-का संक्षिप्त परिचय योगदर्शनकारद्वारा प्रयुक्त चित्त शब्दसे अभिप्रेत मन है, पश्चिमके लोग जिसे सामान्यत: 'माइण्ड' (Mind) कहते हैं।'चित्त' शब्दके लिये अन्त:करण शब्दका प्रयोग

(अन्तः = भीतरी, करण = इन्द्रिय)-के रूपमें है। अमरकोषके अनुसार चित्त, चेतस्, हृदय, स्वान्त, हृत्, मानस—ये मनके पर्याय हैं। आयुर्वेदीय ग्रन्थ चरकसंहितामें अतीन्द्रिय, सत्त्व और चेतस् मनके पर्याय कहे गये हैं। (च०सं०स्०८।४) बाह्य ज्ञानके कारण चक्षु आदि जो

भी प्रचलित है; क्योंकि शरीरमें मनकी स्थिति अन्त:करण

इन्द्रियाँ हैं, उन्हें अतिक्रान्त कर लेनेके कारण मन अतीन्द्रिय (Supersensuous) कहा गया है। कारण यह है कि मनके साथ योग होनेसे ही इन्द्रियाँ अपना–अपना कार्य करती हैं, अन्यथा वे अपने कार्यमें असमर्थ रहती हैं।

चित्तमें सत्त्व, रजस् और तमस्—इन तीनों गुणोंके लक्षण मिलनेके कारण मनको त्रिगुणात्मक कहा गया है। वैसे संसारका प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक होनेसे

| संख्या३] योगः एक  | विश्लेषण ३३   |
|---|---|
| ******************************                              | **********************************                      |
| प्रत्येक समय किसी-न-किसी गुणसे प्रभावित रहता है।            | <b>२. मूढ़ भूमि—</b> इसे मूढ़ावस्था भी कहते हैं। मूढ़   |
| इस नियमके अनुसार ही 'मन' प्रभावित रहता है।                  | वह अवस्था है, जिसमें तमोगुणकी प्रबलता रहती है, रज       |
| सत्त्वगुणकी प्रधानतामें चित्त ज्ञान, प्रकाश                 | तथा सत्त्वगुण दबे हुए गौणरूपसे रहते हैं। यह अवस्था      |
| स्वभाववाला होता है। उस समय चित्तमें अणिमा,                  | काम, क्रोध, लोभ और मोहके कारण होती है। चित्तकी          |
| महिमा आदि लौकिक ऐश्वर्यों और शब्द, स्पर्श आदि               | ऐसी अवस्थामें मनुष्यकी प्रवृत्ति अज्ञान, अधर्म, राग और  |
| विषय सुखोंका उदय होता है। जब उसमें गौणरूपसे                 | अनैश्वर्यमें होती है।                                   |
| विद्यमान रजोगुण, तमोगुण दोनोंका मेल होता है, तब             | <b>३. विक्षिप्त भूमि</b> —इसे विक्षिप्तावस्था भी कहते   |
| सांसारिक ऐश्वर्य तथा शब्दादि विषय प्रिय होते हैं, जब        | हैं। इस अवस्थाको क्षिप्ता एवं मूढ़ा—इन दोनों अवस्थाओंसे |
| यह केवल तमोगुणसे युक्त होता है, तब अधर्म, अज्ञान,           | कुछ बेहतर माना गया है; क्योंकि इसमें सत्त्वगुणाधिक्य    |
| अवैराग्य और अनैश्वर्यको प्राप्त होता है। इस प्रकार इन       | रहता है। इसमें किंचित् कालपर्यन्त समाधि लगनेपर भी       |
| गुणोंकी न्यूनाधिकताकी स्थितिमें विश्वके समस्त व्यवहार       | रजोगुणके जोर मारते रहनेके कारण बीच-बीचमें अन्य          |
| चलते हैं। वही चित्त (मन) जब तमोगुणसे रहित होनेपर            | विषयोंकी ओर चित्त (मन) दौड़ जाता है। इसमें रज           |
| रजोगुणके अंशसे युक्त होता है, तब धर्म, ज्ञान, वैराग्य       | और तम दबे हुए गौणरूपसे रहते हैं।                        |
| और ऐश्वर्यको प्राप्त होता है। वही चित्त जब रजोगुणके         | <b>४. एकाग्र भूमि—</b> इसे एकाग्रावस्था भी कहते         |
| लेशमात्रसे भी रहित होता है, तब स्वरूप-प्रतिष्ठ कहलाता       | हैं। एकाग्रका अर्थ है किसी एक बिन्दुपर केन्द्रीभूत      |
| है, तब चित्त सत्त्व और पुरुषकी भिन्नताका ज्ञान होता         | होना। जिस चित्तका अग्र या अवलम्बन एक है, उसे            |
| है, जिसको विवेक-ख्याति अर्थात् भेदज्ञान कहते हैं और         | एकाग्रचित्त माना जाता है। इस अवस्थामें चित्तकी          |
| 'धर्ममेघ' नामक समाधिकी ओर उन्मुख होता है।                   | वृत्तियाँ बाह्य विषयोंसे दूर हो जाती हैं।               |
| अर्थात् विवेक-ख्यातिके परिपक्व होनेपर धर्ममेघ समाधिकी       | <b>५. निरुद्ध भूमि</b> —इसे निरुद्धावस्था भी कहते हैं,  |
| अवस्था प्राप्त होती है, जिसको योगिजन 'परमप्रसंख्यान'        | जो चित्तकी पाँचवीं और सर्वोत्तम अवस्था मानी जाती        |
| कहते हैं (यो॰सू० १।२ पर व्यासभाष्य)।                        | है। जिस अवस्थामें चित्तकी तामस और राजस वृत्तियोंके      |
| सत्त्व, रजस् और तमस्—इन तीनों गुणोंके                       | साथ-साथ सात्त्विक वृत्तिका भी निरोध हो जाता है,         |
| न्यूनाधिक्यसे चित्त (मन)-की पाँच अवस्थाएँ होती हैं—         | केवल संस्कारमात्र चित्तमें रहते हैं।                    |
| क्षिप्त (Restless), मूढ़ (Blinded), विक्षिप्त (Distracted), | योगशास्त्रानुसार इस अवस्थामें चित्त अपनी                |
| एकाग्र (Single Pointed) तथा निरुद्ध (Restricted)।           | स्वाभाविक स्थिर शान्त अवस्थामें आ जाता है तथा सब        |
| उपर्युक्त पाँच अवस्थाओंको ही योगभाष्यकारने                  | संस्कारोंके तिरोभावके साथ ही विवेकख्यातिका भी           |
| अपने भाष्यमें 'चित्तभूमयः' अर्थात् चित्तकी भूमियाँ          | निरोध हो जाता है, केवल परवैराग्यके संस्कारमात्र शेष     |
| बताया है। इन पाँचों भूमियोंका संक्षिप्त परिचय नीचे          | रहते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश      |
| प्रस्तुत किया जा रहा है—                                    | प्रभृति पाँचों क्लेशसहित कर्माशय-रूप जन्मादिकोंके       |
| <b>१. क्षिप्त भूमि</b> —इसे 'क्षिप्तावस्था' भी कहते         | बीज नहीं रहते। इसलिये इसको असम्प्रज्ञात तथा निर्बीज     |
| हैं। रजोगुणके उद्रेकके कारण विषयोंमें ही व्यापृत            | समाधि भी कहते हैं; क्योंकि इस अवस्थामें ज्ञाता, ज्ञान   |
| रहनेवाली चित्तकी अवस्था 'क्षिप्त' भूमि है अर्थात् यह        | और ज्ञेयका किंचित्मात्र भी ज्ञान नहीं रहता।             |
| भूमि या अवस्था रजोगुणप्रधान होती है, तमस् और सत्त्व         | मनकी चंचलता उसका एक महत्त्वपूर्ण धर्म है।               |
| दबे हुए गौणरूपसे रहते हैं। इसका कारण राग-द्वेषादि           | वह सर्वत्र अस्थिर भावसे घूमता है। यह उसका दोष           |
| होते हैं। इस अवस्थामें धर्म-अधर्म, राग-विराग, ज्ञान-        | भी है। मनकी अस्थिरता उसे एक लक्ष्यमें प्रवृत्त नहीं     |
| अज्ञान, ऐश्वर्य और अनैश्वर्यमें प्रवृत्ति होती है।          | होने देती है। इस अस्थिरताका निराकरण करके उसे            |

भाग ९० अपने स्थानमें लाना, यह योगसाधनाका एक अंग है। **३. विकल्प**—जिस ज्ञानका आधार सिवाय शब्दोंके इस योगसाधनाके बिना कोई भी किसी विषयमें सफलता और कुछ न हो, उसको विकल्प कहते हैं। जैसे किसीके नहीं प्राप्त कर सकता है। योगशास्त्रानुसार अभ्यास और मुँहसे 'शशशृंग' यह शब्द सुन लिया जाय। शशशृंगका वैराग्यसे मनकी चंचलता वशमें की जा सकता है। अर्थ हुआ खरगोशका सींग। खरगोशके सींग नहीं होता, वृत्तिका संक्षिप्त परिचय परंतु यदि कोई इन शब्दोंको सुनकर खरगोशके सींगकी हिन्दीमें 'वृत्ति' शब्दके लिये व्यापार, स्वभाव, सत्ता मान बैठे तो यह विकल्प होगा। इस प्रकार यह व्यवहार, मनकी विशेष अवस्था आदि शब्दोंका प्रयोग विपर्ययके समान ही मिथ्याज्ञान है। किया जाता है। प्रस्तुत सन्दर्भमें वृत्तिका तात्पर्य चित्तकी ४. निद्रा — जब चित्तमें सत्त्व एवं रजस्का अभिभव वृत्तिसे है। चित्त जिस-जिस स्थिति या रूपमें रहता है, होता है एवं तमोगुण प्रधानरूपसे उद्भृत होता है तथा वे स्थितियाँ चित्तकी वृत्तियाँ हैं। योगसूत्रकार महर्षि चित्तमें जाग्रत् एवं स्वप्नवृत्तियोंका अभाव हो जाता है, पतंजिलने उनको निम्न पाँच वर्गींमें वर्गीकृत किया है-उस वृत्तिका नाम निद्रा है। **५. स्मृति**—अनुभूत विषयोंके अनुभवजन्य १. प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम (शास्त्रीय) २. विपर्यय (मिथ्याज्ञान) संस्कारोंका विलोप न होनेका नाम 'स्मृति' है। सुप्रसिद्ध पाश्चात्य मानस-शास्त्रज्ञ जैम्स कहते हैं कि पहले उत्पन्न ३. विकल्प (संशयात्मक ज्ञान) ४. निद्रा (तमका प्रभाव, ज्ञानका अभाव) और हुए किसी भी मनोव्यापारका एक बार मनमें लीन हो ५. स्मृति (अनुभूत विषयका अवशेष)। जानेके बाद जो फिर भान होता है, उसे स्मरण कहते हैं। इन पाँचोंके द्वारा ही कभी क्लेशकी अनुभूति हो जिस स्मृतिका विषय कल्पित या अयथार्थ होता सकती है और कभी क्लेशाभावकी। इनका संक्षिप्त है, उसे 'भावितस्मर्तव्यास्मृति' कहते हैं, जो सदा स्वप्नमें ही होती है और जिस स्मृतिका विषय अकल्पित विवरण इस प्रकार है-१. प्रमाण-ज्ञानको प्रमा कहते हैं और ज्ञानके होता है, उसे 'अभावितस्मर्तव्यास्मृति' कहते हैं, जो साधनको प्रमाण। योगसूत्रकार महर्षि पतंजलिके अनुसार जाग्रत्-अवस्थामें होती है। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम—तीन प्रकारके प्रमाण होते प्रमाणादि पाँचों वृत्तियाँ सात्त्विक, राजस और हैं। सांख्यदर्शनमें भी केवल तीन अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान तामस होनेसे सुख, दु:ख और मोहरूप हैं और सुख, दु:ख और मोह क्लेशस्वरूप है। इसलिये ये सभी और आगम प्रमाण माने गये हैं। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वक्—इन इन्द्रियोंके द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वृत्तियाँ ही निरोध करनेयोग्य हैं। मोह स्वयं अविद्यारूप वह प्रत्यक्ष कहलाता है। प्रत्यक्ष देखने, सुनने, स्पर्श करने, होनेसे सभी दु:खोंका मूल है। दु:खकी वृत्तियाँ स्वयं दु:खरूप ही हैं। सुखकी वृत्तियाँ सुखके विषयों और चखने या सूँघनेके ज्ञानके आधारपर बुद्धिके सोचनेसे, जो प्रत्यक्ष नहीं है, ऐसे अप्रत्यक्ष ज्ञेयके ज्ञानकी वृत्तिको अनुमान उनके साधनोंमें राग उत्पन्न कराती हैं। सुखभोगके बाद कहा जाता है, जैसे दूर पर्वतपर धुआँ देखकर न दीखनेवाली जो उसकी वासना रहती है, वह राग है। उन सुखके अग्निका ज्ञान हो। अनुमान गलत भी हो सकता है, जैसे विषयों और उनके साधनोंमें विघ्न होनेपर द्वेष उत्पन्न कुहरेको धुआँ समझकर अग्निका अनुमान कर लेना। होता है। इसलिये क्लेशजनक सुख-दु:ख मोहस्वरूप आगमसे तात्पर्य शास्त्रीय प्रमाण है। होनेसे सभी प्रकारकी वृत्तियाँ त्याज्य हैं। सामान्यत: हम २. विपर्यय—मिथ्याज्ञान या भ्रान्त धारणाको इन्हीं वृत्तियोंमें फँसे रहकर 'स्वरूप' को भूले रहते हैं। अतः मानवको 'वृत्तिसारूप्य' की साधारण स्थितिसे विपर्यय कहते हैं (यो०सू० १।८)। जो वस्तु जहाँ नहीं है, उसकी वहाँ प्रतीति विपर्यय है, जैसे रास्तेमें रस्सी निकलकर 'वृत्तिनिरोध' द्वारा 'स्वरूपावस्थिति' का दें सिंक्रिय पंत्रिक Piscord Rerver https://dsc.gg/dhagman अकि जायान मिस्ट्रि हा में स्वीन की पंजाबित कि कि

योग: एक विश्लेषण संख्या ३ ] \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* रहना चाहिये। यह प्रयास दीर्घकालतक निरन्तर और साधनासे शरीर और चित्तकी चंचलता दूर होती है एवं क्रमशः चित्तमें स्थिरताका उदय होता है। इसके अनन्तर सत्कारपूर्वक करते रहनेसे 'सिद्धि' की प्राप्ति सम्भव है। निरोधका संक्षिप्त परिचय क्रमश: देश-विदेशमें चित्तबन्ध (धारणा) और उस देशमें निरोध शब्दसे प्रतिबन्ध (Restraint), रोक (Check), ही चिरकालतक एकता एवं अवस्थिति होती है। यही दमन (Suppression), नियन्त्रण (Control) आदिका अवस्थिति दृढ् होनेपर समाधि कही जाती है (योगसूत्र बोध होता है, परंतु प्रस्तुत प्रसंगमें वृत्तियोंके निरोधका २।२९)। समाहित-चित्तकी यह अतिशय एकाग्रता अर्थ इनका नाश या हठात् रोकना नहीं है, प्रत्युत वृत्तियोंके (निरोध) ही योगसाधनाका अभीष्ट (लक्ष्य) है। अपने आधारभृत (अधिकरण) चित्तमें लय हो जानेकी मोटे रूपमें चित्तकी एकाग्रताकी पूर्णता स्थितिको विशिष्ट अवस्थाका नाम 'निरोध' है। चित्तकी पाँच समाधि कहते हैं। अर्थात् साधक साधना करता हुआ भूमियोंमें 'निरोध' अन्तिम भूमि है। चित्तकी वृत्तियोंका पहले धारणा (Concentration or Fixing of Mind)-निरोध कर देनेसे-इसीको चित्तकी निरुद्ध अवस्था की स्थितिको प्राप्त करता है, फिर धारणासे ध्यानमें कहते हैं-सारी इन्द्रियाँ निर्व्यापार हो जाती हैं, जिससे पहुँचता है और अन्तमें ध्यानसे समाधि (Stage of Pure बाह्य प्रपंच दीखना बन्द हो जाता है। प्रमाण, विपर्यय, Consciousness on Absolute Contemplation)-की विकल्प, निद्रा और स्मृति नामक पाँचों प्रकारकी अवस्थाको प्राप्त करता है। चित्तकी जो अवस्था धारणासे वृत्तियोंके निरुद्ध हो जानेपर (असम्प्रज्ञात समाधि सध आरम्भ होती है, वह समाधिमें जाकर पूर्णताको प्राप्त करती जानेपर) द्रष्टा अर्थात् पुरुष 'वृत्तिसारूप्य' की साधारण है। इसी बातको ध्यानमें रखकर योगसूत्रकार महर्षि स्थितिसे निकल स्वरूपास्थिति यानी अपने असली पतंजलिने समाधिकी इस प्रकार परिभाषा की है— स्वरूपमें स्थितिलाभ करता है (पा०यो० समाधि ३)। 'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशुन्यमिव समाधि:।' 'युज्-समाधि' धातुसे बने 'योग' शब्दका (यो०सू० ३।३) अर्थ है—समाधि जब ध्यानमें केवल ध्येयमात्रकी ही प्रतीति होती है योग समाधिको कहा गया है; क्योंकि यह योग और चित्तका निज स्वरूप शून्य हो जाता है, तब वही शब्द 'युज्-समाधौ' से निष्पन्न होता है, 'युजिर्-योगे' (ध्यान ही) समाधि हो जाता है। यानी ध्यानका अभ्यास संयोग अर्थवाली युजिर् धातुसे नहीं। योगभाष्यकार करते समय जब चित्त ध्येयाकारके रूपमें परिणत हो जाता महर्षि व्यासने भी योग शब्दका अर्थ समाधि ही किया हो, उसके अपने स्वरूपका भी अभाव-सा हो जाय और है। अविद्या आदि चित्तकी वृत्तियोंके पूर्ण निरोधका परिणाम सिवा ध्येयके अन्य किसी वस्तुकी प्रतीति न हो, तब उसी यह होता है कि चित्त बाह्य वृत्तियोंसे असम्बद्ध होकर ध्यानकी अवस्थाको समाधि कहा जाता है। समाधिकी स्फटिककी भाँति स्वच्छ रूपसे अवभासित होता है और अवस्थामें एक विशिष्ट प्रकारके ज्ञानका उदय, मनके सब उसके फलस्वरूप द्रष्टा अपने स्वरूपको देखता हुआ प्रकारके संकल्पोंका विनाश और सब प्रकारकी चित्तवृत्तियोंका विस्मरण होता है, मन सर्वथा निश्चल हो जाता है। इसमें उसमें ही अवस्थितिको प्राप्त करता है (योगसूत्र १।३)। यही स्थिति समाधिकी है, इसलिये प्राय: समाधि और सारी अभिलाषाओं, वासनाओं एवं उत्कण्ठाओंकी समाप्ति हो जाती है। योगदर्शनमें समाधिको भी सिद्धि कहा गया योग शब्द पर्यायवाची शब्दके रूपमें भी व्यवहृत होते हैं। योग अर्थमें समाधि शब्दके प्रयोगका कारण यह है (यो०द० साधनपाद ४५) और वही वस्तृत: साधककी भी है कि चित्तवृत्तियोंके निरोध करने अर्थात् योगकी सबसे बडी सिद्धि है। सम्भवत: इसीलिये योगसाधनाद्वारा समाधिस्थितिको प्राप्त करनेका साधकद्वारा प्रयत्न किया साधनामें प्रवृत्त होनेपर अहिंसा आदि यमों और शौच-सन्तोष आदि नियमोंद्वारा कायिक, वाचिक एवं मानसिक जाता है; क्योंकि योगशास्त्रानुसार समाधिके द्वारा कैवल्य शुद्धि हुआ करती है, तदनन्तर आसन और प्राणायामकी (मोक्ष) सिद्धि सम्भव है। यही योगसाधनाका लक्ष्य है।

[भाग ९० जिस देशमें गंगा-जमुना बहती हैं कहानी— ( श्रीरामेश्वरजी टांटिया ) पिछले दिनों दिल्लीके संसद्-भवनके सेण्ट्रल हॉलमें भी इससे पहले जमींदारी और राजनीतिक जीवनमें नहीं गया। मेरे मित्र श्रीभोला रावत एम० पी० ने कहा कि मिल पाया।' दूसरे मित्रने प्रश्न किया, 'क्या आप अपने परिवारमें आइये, आपको एक पुराने मित्रसे मिलवायें। मैंने चारों कभी जाते हैं ?' उन्होंने कहा—'हाँ, कभी-कदाच, जैसे ओर नजर घुमायी, किंतु जान-पहचानका कोई भी व्यक्ति दिखायी न पड़ा। पासकी बेंचपर गेरुआ वस्त्रधारी दूसरे घरोंमें ठहरता हूँ, उसी तरह एक-दो दिनके लिये एक बाबाजी बैठे थे। भोला बाबूने हँसते हुए कहा— वहाँ भी ठहर जाता हूँ।' 'पहचाना नहीं ? ये हैं श्रीमहेन्द्रकुमार सिंह, आपके साथ महेन्द्र बाबूसे हम हमेशा राजनीतिक बहस और सन् १९६२ ई० तक संसद्-सदस्य रह चुके हैं!' फिर हँसी-दिल्लगी किया करते थे, परंतु मैंने देखा अब उनके तो उस दाढ़ी-मूँछोंवाले हँसते चेहरेमें दस वर्ष पहलेके प्रति सबके मनमें श्रद्धा है, एक-दोकी आँखें तो गीली महेन्द्र बाबू मुझे दिखायी दिये। हो आयीं। सन् १९६२ ई० के पहले ही उनके मनमें वैराग्य उसी रात मुझे जयपुर जाना था। ऊपरकी बर्थ मिली थी। सदाकी भाँति भगवे रंगका खादीका कुर्ता जाग गया था। आगेके संसदीय चुनावमें खड़े नहीं हुए। अपना भरा-पूरा परिवार और सम्पत्ति त्यागकर संन्यास पहने था। रक्तचापके उपचारके लिये मेरे मित्र श्रीरामाश्रय दीक्षितद्वारा दी हुई रुद्राक्षकी माला गलेमें थी, जो

तो उस दाढ़ी-मूँछोंवाले हँसते चेहरेमें दस वर्ष पहलेके महेन्द्र बाबू मुझे दिखायी दिये।

सन् १९६२ ई० के पहले ही उनके मनमें वैराग्य जाग गया था। आगेके संसदीय चुनावमें खड़े नहीं हुए। अपना भरा-पूरा परिवार और सम्पत्ति त्यागकर संन्यास ले लिया। पिछले दस वर्षोंसे भारतके प्राय: सभी तीर्थों और पहाड़ोंकी यात्रा कर चुके हैं। पूछा कि क्या आपको किसी प्रकारकी असुविधाका अनुभव नहीं होता? सीधा-सा उत्तर मिला—'वैसे तो संन्यासीको सुख-सुविधा, मान-अपमानका ध्यान ही नहीं रखना चाहिये। गंगा-जमुनाका पवित्र देश है हमारा, इसके हर गाँव और खेड़ेमें श्रद्धालु माँ-बहनें मिल जाती हैं, इसलिये जानी-अनजानी, किसी भी जगह जाता हूँ तो दो रोटी और रहनेका स्थान मिल ही जाता है, कभी-कभी तो दूध-दही और सब्जी भी। हाँ, रेलमें बिना टिकट नहीं

चलता। वैसे तीसरे दर्जमें सफर करता हूँ, फिर भी इसके

लिये पैसेकी जरूरत तो पडती ही है। यदि सरलतासे

लिया। एकने पूछा कि 'महाराज! आप तो बहुत आराम

और मौज-शौकसे रहते थे, इस प्रकारके जीवनसे आपको कष्ट नहीं होता?' उत्तर मिला, 'इस नये मोड्से

वास्तवमें मुझे सुख और शान्ति मिली है, जिसका शतांश

थोड़ी ही देरमें उन्हें बहुत-से परिचित मित्रोंने घेर

व्यवस्था न हो तो पैदल ही यात्रा कर लेता हूँ।'

टिकट चेक करता हुआ मेरे पास आया। बड़ी श्रद्धासे मेरी ओर देखा और किसी तरह नीचेवाली बर्थकी व्यवस्था मेरे लिये कर दी। मैंने सोचा, गार्ड मेरे वेशसे प्रभावित हुआ, क्यों न इस यात्रामें महेन्द्रजीका नुस्खा आजमाया जाय?

जयपुरका काम थोड़ी देरमें निपटाकर ढाई बजे वाली बससे आगराके लिये रवाना हुआ। बस-कण्डक्टरने कहा—'बाबाजी! रास्तेमें मेंहदीपुरके हनुमान्जीका मन्दिर पड़ता है। दर्शन जरूर कीजिये, तुरंत परचा देते हैं।' इस स्थानका नाम बहुत दिनोंसे सुन रखा था। वहाँ पहुँचते-पहुँचते शामके पाँच बज गये। मैं उतर पड़ा। मुख्य सड़कसे मन्दिर दो मील भीतरकी ओर है। ताँगा लेकर वहाँ छ: बजे पहुँचा। हलवाइयों, मोदियोंकी छोटी-छोटी दुकानें, दो-चार धर्मशालाएँ और बेडौल-

सा मन्दिर, यह था मेंहदीपुर। भीतर जाकर देखा,

ढोलकपर कीर्तन हो रहा है और तीन-चार औरतें उसकी

संयोगसे बाहर दिखायी दे रही थी। कण्डक्टर गार्ड

जिस देशमें गंगा-जमुना बहती हैं संख्या ३ ] तालपर सर धुन रही हैं, कभी-कभी चिल्ला उठती हैं। पुराना-सा गद्दा बिछा दिया। मैं उसपर लेट गया। मन्दिरके सम्बन्धमें यह बात कही जाती है कि बालाजीके ट्रक चौड़ी सड़कके दोनों ओरके ऊँचे-ऊँचे पेड़ोंकी झुकी डालियोंके नीचेसे चला जा रहा था। ऊपर प्रभावसे प्रेतबाधा मिट जाती है। खैर, मैं इस विवादमें पड़ना नहीं चाहता कि वास्तवमें वे प्रेत-पीड़ित थीं या खुला आसमान, झिलमिलाते तारे। खलासी नयी उमरका दर्शनार्थियोंको प्रभावित करनेके लिये पुजारियोंद्वारा नियुक्त। था, फुर्तीला और तेज। अपना सुख-दु:ख सुनाने लगा-गर्मी, सड़ाँध और दुकानोंकी मिक्खयोंसे ऊब उठा 'पाँच-छ: वर्षसे ट्रकोंमें घूमा करता हूँ। घरकी गरीबीने और मुख्य सड़कपर आ गया। सात बज रहे थे। घण्टे-कठोर जीवनके लिये बाध्य किया। माँ, छोटे दो भाइयों भर खड़ा रहा, परंतु आगरा जानेवाली कोई बस नहीं और बहनकी देखभाल करती है। बाप शराबी था, पाँच आयी। पता चला, अब कोई बस मिलेगी नहीं। लाचार, बीघा जमीन थी, रेहन रखकर मर गया। ट्रक दौसासे सड़कके किनारे सामान रखकर पासके कुएँकी जगतपर सोफ्टस्टोन लादकर कानपुर जा रहा है। टुकके ड्राइवरको बैठ गया। आठ बज गये, अँधेरा हो आया। सोचने लगा, उस्ताद मानता हूँ। उसीने खलासीमें भरती किया। उसकी शायद वापस मेंहदीपुर जाकर किसी धर्मशालामें ठहरना जुबान कड़वी है, मगर दिल मीठा। बहुत गालियाँ देता पड़ेगा। इतनेमें ही दूरसे आती रोशनी दिखायी पड़ी। और मारता था, मगर काम सिखाकर छोडा। साल-दो कुछ देर बाद देखा, एक ट्रक आ रहा है। पास आनेपर साल हुए ड्राइविंगका लाइसेन्स भी दिला दिया। कभी-कभी स्टिअरिंग पकड़ा देता है, मगर अभी पूरी तौरपर गाड़ी छोड़ता नहीं। तनख्वाहके अलावा अक्सर अपने पाससे कुछ पैसे दे देता है।' में सुनता जा रहा था, मगर थकानसे आँखें झपती थीं। कब गहरी नींदमें सो गया, पता नहीं। एकाएक ड्राइवरकी आवाज सुनायी पड़ी, 'महाराज! भोजन करेंगे?' घड़ी देखी, रातके ग्यारह बजे थे। जंगलमें रास्तेके किसी ढाबेके सामने ट्रक रुका था। हाथ-मुँह हाथ दिखाकर उसे रोका। ड्राइवरने पूछा, 'कहाँ जाना धोकर वहीं रखी मूँजकी खटियापर लेट गया। थोड़ी देर है बाबाजी?' मैंने कहा—'आगरा।' इससे आगे कुछ बाद शुद्ध देशी घीमें छौंकी दाल, सुस्वादु रोटियाँ और और कह पाऊँ कि उसने बड़े रोबसे अपने खलासीको अच्छा दही थालीमें आया, साथमें अचार, तृप्त होकर मेरा सामान ट्रकपर चढ़ानेके लिये कहा। जबतक वह खाया। चलते समय पैसे देने लगा तो ढाबेवाला संकोच नीचे उतरे, आसपास खड़े भक्तोंने मेरा सामान उसे करने लगा। पकड़ा दिया। ड्राइवरने ट्रकके ड्राइवर-केबिनकी छतकी रात करीब डेढ्-दो बजे ट्रक आगरेकी सीमा-ओर इशारा करते हुए कहा—'आप ऊपर आसन लगा चुंगीपर रुका। सुनायी पड़ा, 'ऊपर कौन है?' आवाज लें, कोई कष्ट न होगा।' उसकी आवाजमें स्नेह, श्रद्धा सुनते ही मैं जग पड़ा था। ड्राइवरने बताया, 'एक और विनय पाकर मैं कुछ कह न सका। लोहेकी महात्मा हैं।' ट्रक स्टार्ट करते हुए उसने मुझसे पूछा सीढ़ियोंके सहारे छतपर चढ़ गया। खलासीने अपने 'कहाँ उतरेंगे महाराज ?' मैंने कहा, किसी भी धर्मशालाके सोनेकी जगहके पास ही मेरे सोनेके लिये अपना एक पास छोड़ दो। उसने अनुरोध किया, 'आज रात क्यों-

न इसी ट्रकपर आराम करें, सुबह जहाँ मर्जी चले जायँ।' कम्पार्टमेंटमें पति-पत्नी और तीन बच्चे थे। मैंने कहा— मुझे नींद आ रही थी, उसकी बात मान ली और ट्रकपर 'भाई! एक सीट आप मुझे देनेकी कृपा करेंगे?' उन्होंने ही सो रहा। बच्चोंको एक सीटपर कर दिया और एक पूरी बर्थ मुझे दे दी। मैंने देखा, यहाँ भी मेरे वेशने अपना चमत्कार सुबह पाँच बजे उठा तो देखा कि शहरके बाहर

कल्याण

एक पेट्रोल-पम्पपर दूसरे ट्रकोंके साथ हमारा ट्रक भी खड़ा था। ड्राइवर और खलासी मेरे पास ही गहरी नींदमें

सोये थे। पासकी झाडियोंमें शौचादिसे निवृत्त होकर आया। उस समयतक वे जग चुके थे। ट्रक जमुनाके इस

पार नौ-निहाईमें रुका था। संयोगसे सुबहकी पालीपर

जाता हुआ एक रिक्शा मिल गया। हाथका झोला मैंने

साथ ले लिया और अटैची ट्रकमें ही रहने दी। ड्राइवरको

रिक्शोमें बैठकर जब बेलनगंजसे गुजरने लगा तो सोचा

कि न तो ट्रकका नम्बर लिया और न ड्राइवरका नाम

सारा दिन बिताकर रातमें जब स्टेशन पहुँचा तो पता

चला कि कानपुर जानेवाली पैसेन्जर ट्रेनमें फर्स्ट क्लासकी

सारी सीटें पहलेसे ही भरी हैं। तीन दिनकी लगातार

यात्रासे थका हुआ था। मनमें चिन्ता हुई। देखा, एक

आगरेमें अपने साहित्यिक मित्र रावीजीके यहाँ

पता पूछा, परंतु मनने कहा कि धोखा नहीं होगा।

फोन आया कि आपकी अटैची हमारे ट्रकसे अभी आयी

है, ड्राइवर यहीं बैठा है, आपको प्रणाम कह रहा है। उसने यह भी पूछा कि क्या मैं स्वयं ट्रकसे आया था

या आपके यहाँ आनेवाले कोई महात्माजी थे? मैंने जब अपना कार्ड देकर कि कानपुरमें अपने ऑफिसमें रखवा

उन्हें बताया कि मेंहदीपुरसे आगरातक मैं ही ट्रकपर देना, मैं वहाँसे मँगवा लूँगा। उसने कहा—'फ्रिक न करें आया हूँ, तब जाकर उन्हें विश्वास हुआ। महाराज, आपका बक्स परसों सुबहतक पहुँच जायगा।'

इस यात्रामें एक अभिनव अनुभव हुआ कि आज भी हमारे देशके जनमानसमें गंगाकी पवित्रता और

कामाख्यातक साधु-संन्यासी यात्राएँ कर पाते हैं।

जमुनाका प्रेम वर्तमान है। हजारों वर्षोंसे दोनों बहनोंकी पुण्य भूमिपर बसे लोग साधु-महात्माओंकी सेवा करते आ रहे हैं। देशका सौभाग्य है कि यह परम्परा कुछ

िभाग ९०

दिखाया। जब कानपुर उतरा तो पति-पत्नी और बच्चोंने

घर पहुँचा तो दो-तीन घण्टे बाद अरोडा ट्रान्सपोर्टका

भक्ति-भावसे मुझे प्रणाम किया।

अंशोंमें अवशिष्ट है। यही कारण है कि बिना किसी सम्बलके बदरीनाथसे कन्याकुमारी और द्वारिकासे सुदूर

[ प्रेषक — श्रीनन्दलालजी टांटिया ]

卐

卐

卐

卐

卐

卐

卐

卐

卐

## हे मातु गंगे!

जह्नुकन्या, तुम भीष्ममाता, विवर-थल-नभ-गामिनी॥ सुर-तरंगिनि! शैलनन्दिनि, सर्वकालसुभाषिनी। अघपुंज-कल्मषहारिनी॥ नगपतिपदी, शिव-जटा-जूट-विहारिनी। जाह्नवी, शुचि देवसरि! अविरल सुरवाहिनी, प्रवाहित, लोक हित वरदायिनी।। 卐 देवि, पतितपावनि! पापविनाशिनी। मोक्षदायिनि, 卐 तुम्हीं हो, अवतरित उद्धारिनी॥ की 卐 की, सकल-मंगलकारिनी। मातु! देवी

हे मातु गंगे! सरित पावनि, गौरि, सुर-सरि, मालिनि।

'मोहन' पाप-पुंज-विदारिनी॥ पातकी शरण, तुम, 

दया

संख्या ३ ]

#### प्रेमी भक्त और भगवान् ( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज )

प्रेमी भक्त और भगवान

प्रेमी भक्त और भगवान् अभिन्न होते हुए भी दो हैं और दो होते हुए भी एक हैं। इसपर भी भगवानुकी



देखकर बोले—'प्यारी! तेरा मुख तो मानो चन्द्रमा है और मेरे नेत्र चकोर हैं। ये उसे देखते-देखते कभी

तृप्त ही नहीं होते।' तब किशोरीजीने कहा—'प्यारे! तुम चन्द्रमाकी उपमा देकर स्तुतिमें मेरी निन्दा क्यों

करते हो? चन्द्रमा तो घटता-बढ़ता है, उसमें तो विष है, वह तो कलंकित है, उसके साथ मेरे मुखकी

उपमा कैसे हो सकती है?' श्यामसुन्दर बोले—'प्यारी! मैं तो तुम्हारे मुखकी निन्दा नहीं करता, चन्द्रमाके

शीतल प्रकाश और उसकी सुन्दरतासे तुलना करके तुम्हारे मुखकी शोभाका वर्णन करता हूँ।' किशोरीजीने

कहा—'ऐसी बात नहीं है। तुम तो स्तुतिमें निन्दा करते हो।' इतना कहकर किशोरीजी वहाँसे अन्तर्धान हो

गर्यो । तब श्यामसुन्दर विरहमें व्याकुल होकर किशोरीजीको खोजनेके लिये वन-वन भटकने लगे। इधर किशोरीजी विरह-व्याकुल होकर भगवान्में तन्मय हो गयीं और

अपनेको श्यामसुन्दर समझने लगीं। वह भी वनमें किशोरीजीको खोजने लगीं। रास्तेमें दोनोंकी भेंट हुई।

वह कहने लगे—'मैं नन्दलाल हूँ।' वह कहने लगीं— 'मैं नन्दलाल हूँ इत्यादि।'

प्रेमकी ऐसी महिमा है। उसे न भेद कहा जा सकता है, न अभेद ही कहा जा सकता है। उसमें दूरी भी नहीं है, एकता भी नहीं है। प्रेमका स्वरूप वर्णन

अनन्त है, उसकी कभी पूर्ति नहीं होती।

बाद साधक जिस भावको लेकर साधन आरम्भ करता है, उसके अनुसार मुक्ति, योग और प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है। जो किसी प्रकारके भावको लेकर नहीं चलता,

उसको सभी मिल जाते हैं। प्रेममें देनेका भाव रहता है, लेनेकी इच्छा नहीं

सुखमें ही सुखी रहता है। माता पुत्रका लाड़-प्यार करके उसे सुख देनेमें ही प्रसन्न रहती है, मित्र एक-

दूसरेको सुख देते हैं। पति-पत्नी आपसमें एक-दूसरेको सुख देते हैं। कोई भी एक-दूसरेसे कुछ लेना नहीं

चाहता। इस प्रकार चारों प्रकारके भक्तोंका भाव समझ लेना चाहिये।

करनेमें नहीं आता। अभेदवादमें तो जीवमें ब्रह्मज्ञानकी जिज्ञासा होती है, ब्रह्ममें नहीं। अतः जैसे समुद्र अपनी महिमामें

प्रतिष्ठित रहता है, उसे नदीकी आवश्यकता नहीं होती, नदी ही समुद्रकी ओर चलकर उसमें मिलती है; उसी

प्रकार-जिज्ञासु ब्रह्मको प्राप्त होकर उसमें एक हो

जाता है, उसमें भिन्नता नहीं रहती। इसी प्रकार योगी भी कैवल्य-अवस्थाको प्राप्त हो जाता है, परंतु प्रेममें तो

एक-दूसरेको रस प्रदान करते रहते हैं। अत: प्रेमरस

साधकका प्रयत्न तो चित्तशुद्धितक ही है। उसके

रहती। सच्चा सेवक स्वामीसे कुछ चाहता नहीं, उनके

रसखान-काव्यमें गो और गोपाल ( श्रीजयदीपसिंहजी, एम०ए० ( हिन्दी ) ) मध्ययुगीन कृष्णभक्ति-काव्यधारामें सैयद इब्राहिम इतना ही नहीं, वे स्वयं भी गोपीभावसे भावित होकर अपने आराध्यका गोपाल-वेश धारणकर गोचारणके 'रसखान' का नाम अग्रगण्य है। उनका काव्य गुणात्मक होनेके साथ-साथ वैशिष्ट्यपूर्ण है। मुसलमान होते हुए लिये और गायोंके पीछे-पीछे चलनेके लिये वन जाना भी उनका भगवान् कृष्णके प्रति प्रेम हृदयके आवेगसे चाहते हैं। इस सन्दर्भमें उनकी भावनाओंको प्रतिबिम्बित करनेवाला निम्नलिखित सवैया द्रष्टव्य है-

प्रसूत है। इतना ही नहीं, उन्होंने महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके पुत्र स्वामी श्रीविद्वलनाथजीका शिष्यत्व भी ग्रहण किया मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माल गरें पहिरौंगी।

था। उनकी रचनाओंमें भगवान् कृष्णके गोपालस्वरूप ओढ़ि पितंबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी॥ और स्वयंके गोप्रेमके अनेक चित्र अंकित हैं। उनके भावतो वोहि मेरो रसखानि सों तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी। विषयमें यह कहना रंचमात्र अनुचित नहीं होगा कि वे या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥

सच्चे अर्थोंमें समन्वयवादी भारतीय संस्कृतिके प्रतिनिधि हैं। जाति, धर्म और सम्प्रदायकी सीमाओंसे परे उनके काव्यमें आये गो और गोपालके कतिपय दृश्योंके यहाँ शब्दचित्र प्रस्तुत हैं, जो वस्तुत: गो और गोपालकी

भक्तिसे समन्वित रसखानके हृदयके उद्गार हैं— रसखान अपनी मनोभावना व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यदि मेरा अगला जन्म मनुष्यके रूपमें हो तो मैं व्रजके गोकुल गाँवमें निवास करूँगा और यदि मुझे पशुयोनि मिली तो उसमें मेरा वश नहीं है, फिर भी मेरा

प्रयास रहेगा कि मैं प्रतिदिन नन्दजीकी गायोंके बीच चरनेके लिये जाया करूँ-मानुष हों तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।

जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्दकी धेनु मँझारन॥ भगवान् कृष्ण गोपालस्वरूप धारणकर जब गायें चराने जाते हैं तो उस समय उनके हाथमें लकुटी और

कन्धेपर कमली होती थी। रसखानके लिये भगवान् कृष्णका यह स्वरूप सबसे आकर्षक था। इसका वर्णन

करते हुए वे लिखते हैं-या लकुटी अरु कामरियापर, राज तिहूँ पुरकौ तजि डारौं।

रसखानि, कबों इन आँखिनसों, ब्रजके बनबाग तड़ाग निहारौं।

आठहु सिद्धि नवो निधिकौ सुख, नन्दकी गाइ चराइ बिसारौं॥

ग्वालन सँग जैबो वन ऐबौ सुगाइन सँग हेरि तान गैबौ हा हा नैन फरकत हैं। ह्याँ के गजमोती माल बारौं गुंजमालन पै कुंज सुधि आए हाय प्रान धरकत हैं॥

गोबर को गारो सुतौ मोहि लगै प्यारौ कहा भयो महल सोने को जटत मरकत हैं। मन्दिर ते ऊँचे यह मन्दिर हैं द्वारिका के

ब्रज के खिरक मेरे हिए खरकत हैं॥ सायंकाल गोधूलि वेलामें बाँसुरी बजाते मनमोहन

िभाग ९०

गोपाल वनसे वापस लौट रहे हैं, उनके साथ गायें और ग्वाल-बाल हैं। ब्रजबालाएँ दिनभर उनके वियोगसे व्याकुल रहती हैं, अत: उनके दर्शनहेत् वे झरोखोंपर आ

जाती हैं। रसखान इस दृश्यका शब्दचित्र एक सवैयेमें

एक कवित्तके माध्यमसे रसखान अपनी भावनाओंको

व्यक्त करते हुए कहते हैं कि मैं भी ग्वाल-बालों और सुन्दर गायोंके साथ वनमें जाऊँगा और वहाँ तान भरकर

गायन करूँगा। वहाँकी गुंजा-मालाओंपर मैं गजमुक्ताकी मालाएँ न्यौछावर करता हूँ। वहाँके कुंजोंकी याद

आनेपर मेरे प्राण फडफडाने लगते हैं। रत्नजटित सोनेके

महलोंसे भी गोबरसे लिपी-पुती मिट्टीकी कुटिया मुझे

प्यारी लगती है। इन बड़े-बड़े महलोंसे भी श्रेष्ठ मुझे

व्रजकी गायोंके लिये बने बाड़े लगते हैं-

कोटिक हों कलधौतके धाम, करीलकी कुंजन ऊपर वारौं॥

```
'जय गंगे तव वारि'
संख्या ३ ]
इस प्रकार खींचते हैं-
                                                   वर्षाकर मेरे तनकी तपन बुझायेगा और मेरे प्राणोंको
आवत हैं बन तैं मनमोहन गोहन संग लसै ब्रज ग्वाला।
                                                   रिझायेगा—
बेनु बजावत गावत गीत अमीत इतै करिगौ कछु ख्याला॥
                                                   गोरज विराजै भाल लहलही वनमाल
हेरत टेर थकी चहुँ ओर तें झाँकि झरोखिन तैं ब्रजबाला।
                                                                   आगे गैयाँ पाछैं ग्वाल गावें मृदुतान री।
देख सु आनन के रसखान तज्यो सब को त्रय ताप कसाला॥
                                                   जैसी धुनि मधुर मधुर बाँसुरी की
     वस्तुतः गोपियों और ब्रजबालाओंके व्याजसे रसखान
                                                                   तैसी बंक चितवनि मंद-मंद मुसकान री॥
अपनी ही मनोभावनाओंको व्यक्त करते हैं। कृष्णके
                                                   कदम विटप के निकट तटनी के तट
दर्शन करनेके लिये उनके प्राण सदा आकुल-व्याकुल
                                                                   अटा चढ़ि देखि पीत पट फहरान री।
रहते हैं। उनके मन-प्राण हमेशा कृष्णके गोपाल-वेशका
                                                   रस बरसावै तन तपन बुझावै नैन
दृश्य देखते रहते हैं; जिसमें श्रीकृष्णके केश गोरजमें सने
                                                                   प्रानिन रिझावै वह आवै रसखान री॥
हैं, वक्ष:स्थलपर वनमाला लहलहा रही है। उनके
                                                        इस प्रकार रसखानको रसके खान गोपालके गायों
आगे-आगे गायें और पीछे-पीछे ग्वाल-बाल चल रहे
                                                   और ग्वाल-बालोंके साथ आकर दर्शन देनेकी एक अन्तहीन
हैं। उनके वंशीवादनकी मधुर ध्विन चारों ओर फैल रही
                                                   उत्सुकतामय प्रतीक्षा रही है। उनकी गो और गोपालके
है। उनकी आँखोंमे बाँकी चितवन और अधरोंपर मन्द-
                                                   प्रति यह प्रेम-श्रद्धामयी भक्ति आज भी उतनी ही प्रासंगिक
                                                   है, जितनी कि उनके समयमें। उनके एक पदकी निम्न
मन्द मुसकान है। उनका श्याम-शरीर श्यामल मेघका
आभास दे रहा है, उसपर फहरता पीला पीताम्बर
                                                   पंक्तियाँ आज भी भक्तोंके लिये कण्ठहार बनी हैं-
विद्युत्की-सी आभा दे रहा है। इस दृश्यको देखकर
                                                             बनवारी बलिहारी जाउँ
                                                        एहो
                                                                                      तेरो
रसखान कल्पना करते हैं कि यह श्यामघन रसकी
                                                              मेरी गैल किनि आइ नेक गाइनि चराउ रे।
                                     'जय गंगे तव वारि'
                                         ( श्रीगंगालालजी मेहता )
                                                 करे.
                                                       जनिन
                       भव
                                         भंजन
                                                               जाह्नवी
                                   भय
                                                                        माय।
                                                                                 *
                 *
                  *
                       जाको
                                  धारे
                                           जगतपति,
                                                         गंगाधर
                                                                                 *
                                                                     कहलाय॥
                  ×
                                                                                 *
                                                है,
                                                                        लीन।
                              उमापति
                                         संग
                                                              रमापति
                       उमा
                                                       रमा
                  *
                                                                                 *
                       हे
                                                                      आधीन॥
                                   महिमा
                                            बड़ी,
                                                    हरि
                            गंगा
                                                          हर
                                                                तव
                  *
                                                                                 *
                                                               वारि
                                                  मग,
                                                         पंथ
                                                                      विश्राम।
                       गाम
                              गाम
                                     अरु
                                           नगर
                  *
                                                                                 *
                               पथिक
                                                   मिले,
                       थिकत
                                       दो
                                             क्षण
                                                          जपें
                                                                तिहारो
                                                                        नाम॥
                                                                                 *
                                                                                 *
                                      हानि
                       लाभ
                              मिले
                                             मिटे,
                                                            गंग
                                                                  जो
                                                                        जाय।
                                                    शरण
                  *
                                                                                 *
                                            पियै,
                              बुँद
                                                         की
                       एक
                                    अमृत
                                                   यम
                                                                त्रास
                                                                      मिटाय॥
                  ×
                                                                                 *
                              लहरि
                                                                      निहारि।
                                      शिवशीश
                       लहरि
                                                 पर,
                                                       अनुपम
                                                                छटा
                                                                                 *
                  ×
                                        भंजन
                                                करे,
                                                                        वारि॥
                                  भय
                                                            गंगे
                  *
                       भव
                                                      जय
                                                                  तव
                                                                                 *
                                                                                 *
                       हरि
                             चरणों
                                    में
                                         हरिपदी,
                                                  जल
                                                        मय
                                                                         रूप।
                                                              हर
                                                                   सम
                                                                                 *
                                          भूमिचर,
                                                           तेरे
                       जलचर
                                 नभचर
                                                     सब
                                                                  अनु
                                                                         रूप॥
                  ×
                                                                                 *
                                    नहिं
                                           कर्म
                       नहीं
                              पुण्य
                                                 शुभ,
                                                        नहीं
                                                               भजा
                                                                      हरिनाम।
                  *
                                                                                 -X-
                            सुरसरि!
                                      तेरी
                       हे
                                                    पूर्ण
                  *
                                            कृपा,
                                                                 शुभ
                                                                        काम॥
                                                                                 *
                  *
                                                     [प्रेषक—सुश्री चन्द्रिकाजी भट्ट]
                                                                                 *
```

साधनोपयोगी पत्र तो सारे कर्म-संस्कार ही दग्ध-विनष्ट हो जायँगे। (१) 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि......।'

बुरे संकल्पके अनुसार काम मत करो प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र

मिला। उत्तरमें निवेदन है कि पता नहीं, कितने जन्मोंके

कितने अच्छे-बुरे कर्म-संस्कार हमारे मनपर अंकित हैं।

हम जब सत्संगमें, शुभ कार्योंमें प्रवृत्त रहते हैं, तब ब्रे संस्कार कम जागते हैं। जब असत्-संग और असत्

कार्योंमें लगते हैं, तब बुरे संस्कार अधिक जागते हैं। पर

जब वे अन्दर हैं तो उनका जागना स्वाभाविक है।

साधकका कार्य तो है-बुरे संस्कार जगनेपर उनके अनुसार कार्य न करना, उन्हें कार्यरूपमें परिणत न होने देना। बुरे संस्कार जगनेपर यदि हम उनके साथ न

मिलकर उनको कार्यमें परिणत न होने देंगे तो वे क्रमश:

मर जायँगे। पाप-संस्कारोंका उदय हो सकता है, मनमें काम, क्रोध, लोभादिकी वृत्ति जग सकती है, पर उसमें आसक्त न होकर उसे वहींका-वहीं मार देना-यही साधकका कर्तव्य है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्। कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥ (4173) 'जो साधक इस मनुष्यशरीरके त्यागसे पूर्व ही

काम, क्रोधसे उत्पन्न वेगको सहन करनेमें समर्थ है, वही योगी है और वहीं सुखी है।' अभिप्राय यह है कि उनके वेगको बाहर न निकलने

दें, अन्दर-ही-अन्दर सहन कर लें—अतएव आपसे यही

निवेदन है कि आप सावधानीके साथ मनमें उत्पन्न होनेवाले बुरे संकल्पोंके अनुसार कार्य न करें, उन्हें भीतर-

का-भीतर मार दें। यह निश्चित है कि उन्हें कार्यमें

परिणत होनेका अवसर नहीं मिलता रहेगा तो वे मर जायँगे। साथ ही अपनेको सदा सत्प्रवृत्तिमें—अपने मन-इन्द्रियोंको यथासाध्य सत्में लगाये रखें तो नये संस्कार

और—

'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते.....।' प्रसिद्ध है। शेष भगवत्कृपा।

हृदय बदलनेके लिये क्षमा और प्रेम प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र प्राप्त हो गया था, उत्तर देनेमें देर हो गयी। आपने जो बातें

लिखीं, वे सब पहले सुन चुका हूँ। एक तरफकी बात नहीं, दोनों ओरकी बात सुनकर ही मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा था कि मुकदमा उठ जाना चाहिये और आपको

उसे क्षमा कर देना चाहिये। मेरा अपना ऐसा अनुभव है और विश्वास तो है ही कि हृदय बदलनेके लिये दण्डकी अपेक्षा क्षमा और प्रेम अधिक सफल होता है और इसीलिये मैंने दूसरे पक्षको भी लिखा था कि वे इस

मामलेको निपटा दें, परंतु यदि आपकी इच्छा नहीं है और आप उसीमें उसका और अपना मंगल समझते हैं तो अपनी इच्छाके अनुसार करनेके लिये स्वतन्त्र थे और

(२)

स्वतन्त्र हैं। मेरा न उसके साथ कोई पक्ष है और न आपके प्रति कोई विरोध। जहाँतक मेरी अपनी समझ है, एक हितैषीके नाते तो आपसे भी यही प्रार्थना करूँगा

कि उसके साथ प्रेमका बरताव करके अपनी साधुताकी उच्चता आपको सिद्ध करनी चाहिये। '*उमा संत कड़ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई।।* 'शेष जैसी आपकी इच्छा हो, आप कर सकते हैं। मेरा जरा भी आग्रह न समझें। शेष भगवत्कृपा।

(3) अच्छे आदमीके साथ अच्छाई साथ रहेगी सप्रेम हरिस्मरण। काम-धन्धेके बाबत आपने

लिखा, सो बिलकुल ठीक है। काम-धन्धेका ढंग तो इस शुभ होंगे, वे ही जगेंगे, पुराने दब जायँगे और भगवान्की समय सभी जगह खराब हो रहा है। काम तो भगवान्के Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha कृपास भगवच्छरणागीत या तत्त्वज्ञानका प्राप्ति हे भयी चलाये | ही चलगा

साधनोपयोगी पत्र संख्या ३ ] तहसीलमें क्या, कैसी चेष्टा करनी चाहिये, इसे मैं और भी उज्ज्वल होता है। गुण्डईकी तो कल्पना ही क्यों नहीं जानता। यह सब सोचना, विचारना, करना, कराना, होनी चाहिये। कोई आदमी भूल करे तो हम बदलेमें आपका ही काम है। वहाँके वातावरणसे मैं परिचित हूँ। गुण्डे बन जायँ? इसमें हमारा क्या लाभ है? इस आजकल किसी स्थानविशेषका ही क्या, सारे भारतवर्षका जोशको उतार दीजिये। अपने चरित्र और आचरणको यही हाल है, परंतु क्या किया जाय? मनुष्य भाँति-अधिक-से-अधिक पवित्र, उज्ज्वल, सर्विहतकारी बनानेकी भाँतिकी लुभावनी प्रवृत्तियोंमें पड़कर अपनेको गिरा रहा चेष्टा कीजिये। जिन्होंने आपके साथ बुराई की है, है। उसे परलोक और परमात्माका मानो कोई विचार ही उनका हृदयसे भला चाहिये। वे भूलमें है। उनके प्रति जरा भी द्वेषभाव मत रिखये। न उनका कभी अहित ही नहीं रहा। जिस ढंगसे मनुष्य आज अन्धा होकर कामोपभोगके पीछे पड़ा है, उसका परिणाम तो दु:ख सोचिये। आपने ठाकुरसाहबको कुछ भी नहीं लिखनेके ही होगा। मेरी तो ऐसी धारणा है कि जगत्में अभी दु:ख लिये लिखा, इसलिये मैं नहीं लिख रहा हूँ। लिखनेका बहुत बढ़ेगा, फल तो वही होगा, जैसा बीज है। हम मन तो हुआ था। फिर रुक गया। सब समाचारोंके पत्र बबूलके पेड़से आम नहीं पा सकते। मुझको बराबर देते रहें। आपने जब कोई अपराध नहीं अच्छे आदमी कहीं भी रहें, उनकी अच्छाई उनके किया है तब आपपर कोई बात क्यों होने लगी। जो कुछ हुई है या आगे भी हो सकती है, वह आपकी किसी साथ रहेगी और उससे लोगोंको स्वाभाविक सुख मिलेगा। शेष भगवत्कृपा। पूर्वकृत क्रियाका ही फल है। किसीका दोष नहीं है। यह घटना और ये लोग तो उसमें निमितमात्र हैं। आप (8) सात्त्विक भावसे भगवत्सेवामें लगा रहना जरा भी चिन्ता न कीजिये। प्रत्येक परिस्थितिका धैर्य, चाहिये शान्ति, ईश्वरविश्वास और आत्मिक पवित्रतापर विश्वास प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। इधर बहुत दिनोंसे रखते और इन्हें सुरक्षित रखते हुए ही सामना कीजिये। मैं कोई पत्र नहीं लिख सका। आपका पत्र भी नहीं मिला। अन्तमें सत्यकी विजय होगी। भाई! आप जिस क्षेत्रमें पड़े हुए हैं, मुझे तो वह बड़ा भयानक विपत्तिके सामने दृढ्तापूर्वक खड़े रहनेसे विपत्ति ऊपर-ऊपरसे निकल जाती है। यदि कोई उस समय गिर मालूम होता है। यह मेरी कमजोरी ही है। राग-द्वेषसे बचकर, दलबन्दीमें पड़कर, ऐसे क्षेत्रमें रहना सहज काम जाय तो उसको वह धर दबाती है। आँधी आती है फिर नहीं है। जो कुछ हो, मेरा बार-बार यही निवेदन है कि निकल जाती है। यही हाल विपत्तिका है। 'हारिये न मानव-जीवन बहुत थोड़ा है और वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण *हिम्मत बिसारिये न राम* 'मनमें रोष-विषाद न कीजिये। कार्यके लिये। इस जीवनका एक-एक क्षण सात्त्विक भावसे यह जो बदनामी हुई है, किसी भलाईके लिये ही हुई भगवत्सेवामें ही लगना चाहिये। शेष भगवत्कृपा। है। बदनामी होनेमें डर नहीं। डर है बदनामीका काम करनेमें। कोई हमें लाख बार बुरा बतलाये और घृणा विपत्तिमें दुढ़तापूर्वक खड़े रहें करे, जरा भी आपत्ति नहीं है-यदि हम वस्तुत: प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कल यहाँ सकुशल भगवान्के सामने बुरे नहीं हैं और यदि हम बुरे हैं तो पहुँच गया। आप नहीं आये सो बहुत अच्छा किया। इस चाहे सारी दुनियाँ हमारी तारीफ करती हो—हमें महात्मा समय आपका वहाँ रहना बहुत आवश्यक है। सारे बतलाती हो। उसका कुछ मूल्य तो है ही नहीं। वह समाचार ज्ञात हुए। घबराइयेगा नहीं। विपत्ति तो सत्यकी आत्मप्रवंचना है और बड़ा भारी नैतिक पतन है। शेष कसौटी है। सत्यका सोना विपत्तिकी आगमें तपकर ही भगवत्कृपा।

कल्याण

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें २। ५७ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीवृत, चन्द्रोदय

भरणी नक्षत्रका सूर्य दिनमें १।५३ बजे, मूल दिनमें ४।२६ बजेतक।

भद्रा दिनमें ४। ४५ बजेसे रात्रिशेष ४। ३३ बजेतक, मकरराशि रात्रिमें

कुम्भराशि रात्रिशेष ४।५४ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिशेष ४।५४ बजे।

मीनराशि दिनमें ८। ४० बजेसे, वरूथिनी एकादशीवृत (सबका),

भद्रा प्रात: ५। ४५ बजेसे दिनमें ४। ३२ बजेतक, मेषराशि दिनमें

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

मिथुनराशि दिनमें ४। ३३ बजेसे, श्रीपरशुरामजयन्ती, अक्षयतृतीया।

**भद्रा** प्रात: ५। ३४ बजेसे दिनमें ४। ४५ बजेतक, **वैनायकी** 

कर्कराशि रात्रिमें ९। ४ बजेसे, आदि जगदगुरुशंकराचार्यजयन्ती,

**भद्रा** रात्रिशेष ५।१२ बजेसे, **कन्याराशि** दिनमें १।३ बजेसे। भद्रा सायं ६।० बजेतक, मोहिनी एकादशीव्रत, (सबका)।

भद्रा रात्रिमें ११।५५ बजेसे, श्रीनृसिंहचतुर्दशीव्रत, सायन मिथुनराशिका

भद्रा दिनमें १२। ५० बजेतक, वृश्चिकराशि दिन १२। ४ बजेसे,

**भद्रा** दिनमें १२। २२ बजेतक, **शुक्रास्त** सायं ६। ५९ बजे।

११। १४ बजेसे, **पंचक** समाप्त दिनमें ११। १४ बजे।

रात्रिमें ९।७ बजे, मूल दिनमें १।२८ बजेसे।

धनुराशि दिनमें ३।१० बजेसे।

भद्रा रात्रिमें १। १४ बजेसे।

श्रीवल्लभाचार्यजयन्ती।

प्रदोषव्रत, मूल दिनमें १२।५१ बजेसे।

अमावस्या, मूल दिनमें ९। ३४ बजेतक।

**कृत्तिका नक्षत्रका सूर्य** दिनमें ८।५२ बजे।

तुलाराशि रात्रिमें १२।१७ बजेसे।

सूर्य रात्रिमें १२।१६ बजे।

पूर्णिमा, बुद्धजयन्ती।

वृषराशि दिनमें १। ३२ बजेसे।

श्रीगणेशचतुर्थीव्रत ।

श्रीसीतानवमी।

प्रदोषव्रत।

११।१६ बजेसे।

### व्रतोत्सव-पर्व

२६ ,,

२७ ,,

१ मई

२ ,,

3 ,,

8 11

4 ,,

दिनांक

७ मई

١١ )

9 "

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख कृष्णपक्ष

नक्षत्र दिनांक

तिथि

प्रतिपदा दिनमें ११। ३४ बजेतक शनि

भद्रा रात्रिमें २। १२ बजेसे।

स्वाती दिनमें ८।५४ बजेतक | २३ अप्रैल | वृश्चिकराशि रात्रिशेष ४। ४४ बजेसे।

द्वितीया 🕖 १। २५ बजेतक रिव विशाखा '' ११।२० बजेतक २४ '' २५ ,,

अनुराधा 🕶 १। २८ बजेतक

तृतीया 🕖 २। ५७ बजेतक 🛮 सोम 🖡

चतुर्थी ,, ४। १ बजेतक मंगल ज्येष्टा 🙌 ३।१० बजेतक

बुध 😗 ४। २६ बजेतक मूल

पंचमी <sup>,,</sup> ४। ३९ बजेतक

पू० षा० सायं ५।१२ बजेतक २८ 🕠 गुरु

षष्ठी 🦙 ४। ४५ बजेतक

२९ ,, शनि श्रवण 😗 ५।१३ बजेतक

सप्तमी " ४।१९ बजेतक शुक्र | उ० षा० '' ५।२७ बजेतक

अष्टमी " ३। २४ बजेतक

रवि धनिष्ठा दिनमें ४। ३५ बजेतक

सोम शितभिषा ११३। ३७ बजेतक

नवमी 🦙 २।५ बजेतक दशमी ग१२ । २२ बजेतक एकादशी "१०। २२ बजेतक मंगल पू० भा० '' २। २१ बजेतक

द्वादशी 🦙 ८।८ बजेतक उ० भा० 🗤 १२। ५१ बजेतक बुध त्रयोदशी प्रात: ५ ।४५ बजेतक रेवती 😗 ११।१४ बजेतक गुरु

चतुर्दशी रा.शे. ३।१८ बजेतक

अमावस्या रात्रिमें १२। ५२ बजेतक | शुक्र | अश्विनी 꺄 ९। ३४ बजेतक सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, वैशाख शुक्लपक्ष

वार

रवि

तिथि

द्वितीया '' ८। २० बजेतक

प्रतिपदा रात्रिमें १०।३१ बजेतक शिन

त्रयोदशी ११९।५४ बजेतक गुरु

चतुर्दशी ''११।५५ बजेतक |शुक्र

पूर्णिमा ''१। ४५ बजेतक शिनि

मृगशिरा रात्रिशेष ४।१ बजेतक तृतीया सायं ६। २३ बजेतक सोम चतुर्थी दिनमें ४। ४५ बजेतक मंगल आर्द्रा रात्रिमें ३।१८ बजेतक

पंचमी 🗤 ३।३१ बजेतक बुध पुनर्वसु ११२। ५९ बजेतक ११ ११

षष्ठी 😗 २। ४१ बजेतक पुष्य 🗤 ३।८ बजेतक सप्तमी '' २। २१ बजेतक आश्लेषा 🗤 ३। ४८ बजेतक शुक्र

अष्टमी 🗤 २। ३१ बजेतक शनि मघा रात्रिशेष ४।५६ बजेतक

पु० फा० अहोरात्र

नवमी ११३।१६ बजेतक रिव दशमी ग४।२४ बजेतक सोम

द्वादशी रात्रिमें ७। ५२ बजेतक बुध हस्त

एकादशी सायं ६।०० बजेतक मिंगल

पू० फा० प्रातः ६।३२ बजेतक उ० फा० दिनमें ८।३७ बजेतक

नक्षत्र

भरणी दिनमें ७। ५५ बजेतक

कृत्तिका प्रातः ६। २४ बजेतक

रोहिणी रा.शे. ५।५ बजेतक

११ १०। ५९ बजेतक

चित्रा <sup>77</sup> १। ३५ बजेतक

स्वाती <sup>11</sup> ४। १२ बजेतक विशाखा सायं ६। ४१ बजेतक रि१ ''

१३ "

1189

१५ "

१६ "

१७ "

१८ "

१९ "

20 "

१२ " श्रीरामानुजाचार्यजयन्ती, मुल रात्रिमें ३।८ बजेसे। भद्रा दिनमें २। २१ बजेसे रात्रिमें २। २६ बजेतक, सिंहराशि रात्रिमें ३।४८ बजेसे, श्रीगंगासप्तमी। वृषसंक्रान्ति रात्रि ८।१ बजे, मूल रा.शे. ४।५६ बजेतक, ग्रीष्म-ऋतु प्रारम्भ।

कृपानुभूति संख्या ३ ] कृपानुभूति गंगामैया और बजरंगबलीकी कृपा सनातन हिन्दू समाजमें प्रत्येक कुलकी अपनी परम्पराओंको देखती आ रही है और वर्ष १९८६ ई० परम्पराएँ होती हैं, कुलदेवी और कुलदेवता होते हैं; इन से तो मेरी पूजनीया मॉॅंके स्वर्गवासी होनेके बाद उसे ही परम्पराओंको मानने और कुलके देवी-देवताओंके पूजनसे सभी फर्ज निभाने पड़ रहे हैं। सन् २००९ ई० के मई माहमें हमलोगोंने विचार कुलके सदस्योंका लौकिक कल्याण होता है, साथ ही इनकी अवहेलना करनेसे विपरीत फलकी प्राप्ति होती किया कि पूजनीया पितामहीजीको स्वर्गवासी हुए पचास है। वर्तमान समयमें पाश्चात्य-प्रभावके कारण ये कुल-वर्षसे अधिक हो गया और परम पुज्य पिताजी भी परम्पराएँ नष्ट होती जा रही हैं, जिनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष लगभग पचासी वर्षोंकी अवस्थामें वर्ष १९७४ ई० में प्रभाव भी परिवारके सदस्योंपर पड़ता है। यहाँ इसी स्वर्ग सिधार गये। मेरी पहली पितामहीजी, जिनका शृंगार अबतक किया जा रहा है, वे तो मेरे पूज्य भावबोधको एक सत्य घटना प्रस्तुत की जा रही है— मैं अपने परिवारके गुसाईंघर (गहबर)-में बचपनसे पिताजीके जन्मके पाँच-सात वर्ष पूर्व ही अर्थात् १८८५ ही तीन तरहका शृंगार देखते आ रहा हूँ। मैंने ई० या इसके आस-पास स्वर्गवासी हुई होंगी। जबतक बाल्यकालमें ही अपनी परम पूज्या पितामहीसे इस मेरे स्व॰ पिताजीकी माँ एवं मेरी स्व॰ पितामहीजी सम्बन्धमें पूछा था। उन्होंने बताया कि सिन्दूर और घीके जीवित रहीं, तबतक उनकी सौतका शृंगार किया जाना मिलावटसे जो पाँच खड़ी रेखाएँ खींची गयी हैं, वह युक्तियुक्त हो सकता था, परंतु अब तो उनसे आगेकी परमेश्वरी देवीकी सेवा है और इसी मिलावटसे जो दूसरा एक पीढ़ी अर्थात् मेरे पूज्य पिताजी एवं पूजनीया वृत्ताकार शृंगार किया जाता है, वह मेरी सौतनका शृंगार माताजीको भी स्वर्गवासी हुए क्रमश: ३५ एव २३ वर्ष है, जो कि शादीके बाद एक सालके अन्दर ही बीत गये। हमलोग भी अब कुछ ही दिनोंके लिये इस द्विरागमनके पूर्व स्वर्गवासी हो गयी थीं और तीसरा धराधामके यात्री रह गये हैं। इसलिये स्वर्गीया दादीजीके शृंगार जो कि सिर्फ गायके घीसे किया जाता है, वह लिये जो शृंगार किया जा रहा है, उसे खत्म कर दिया भगवान् नरसिंहकी सेवाका प्रतीक है। मैंने उनसे जानना जाना चाहिये। आगेके बाल-बच्चोंके लिये इस बोझको चाहा था कि उनकी सौतनका शृंगार क्यों किया जाता हटा ही दिया जाय तो अच्छा होगा। है तो उन्होंने बताया था कि जो लड़की शादीके बाद शृंगार पक्के मकानमें प्लास्टरको थोड़ा गड्ढा द्विरागमनके पूर्व ही बिना पतिसे मिले ही स्वर्गवासी हो बनाकर किया जाता था। घीमिश्रित होनेके कारण जाती है, उसका श्रृंगार किये जानेकी परम्परा चली आ सिन्दूरका शृंगार जम जाया करता था और दिनानुदिन रही है। इसीलिये अपने घरमें ऐसा किया जा रहा है। ऊँचा हो रहा था। इसलिये गड्ढेसे बाहर निकलकर ऊँचा मेरा बालमन उस समय उनके इस कथनसे पूर्णतया हो गया था। मेरी पत्नी मनोरमाने एक दिन बाहर निकले सन्तुष्ट हो गया था। मेरी परम पूज्या पितामहीजीका वर्ष हुए सिन्दूर एवं घीके अंशको लकड़ीसे खोदकर बाहर १९५७ ई० में स्वर्गवास हो गया। उस समयतक मनोरमा निकाल दिया। (मेरी पत्नी) भी द्विरागमन हो जानेके कारण ससुरालमें ७ जून सन् २००९ ई० दिन रविवारकी बात है, रहने लगी थी। उसी समयसे वह भी इन सभी उस दिन अपने दरवाजेपर निर्मित मन्दिरमें श्रीबजरंगबलीकी

भाग ९० प्रतिमाकी प्राण-प्रतिष्ठाका आयोजन किया गया था। उसने बताया कि अभी मैं गर्मीके कारण जगी हुई उसके चार-पाँच दिन पूर्वसे ही भयंकर गर्मी एवं ध्रपका थी कि मेरे सिरहानेमें गंगामैया एवं बजरंगबली आकर प्रभाव शुरू हो गया था। पूजाके दिन मैं तो पूजापर ही खड़े हो गये। बजरंगबलीने कहा कि तुमने अपनी था तथा मेरे सभी लड़के एवं लड़िकयाँ भी उपस्थित दादीका शृंगार क्यों खोदा? उसीसे तुम्हें परेशानी हो रही थीं। जबतक पूजा होती रही, मनोरमा वहीं मन्दिरमें ही है। तुम जबतक जिन्दा रहो, शृंगार करती रहो, इसीमें दो-ढाई बजे अपराह्नतक बैठी पूजा देखती रही। पूजाका तुम्हारी कुशलता है। जब तुम नजदीकसे अपनी मौतको जो भी विधान था, सम्पन्न हुआ और भजन-कीर्तनका देख लेना, तब तुम अपने बच्चोंको इसकी जवाबदेही सौंप देना। वे लोग जैसा भी होगा, करेंगे। तुम अपने भी आयोजन किया गया, जो देर राततक चलता रहा। दो दिनोंके बाद मनोरमाकी तबीयत खराब हो जीवनकालमें अपने कर्तव्यको निभाती रहो। तुम अब गयी। उसे भयंकर कमजोरी महसूस होने लगी और गर्मी ठीक हो जाओगी। अब तुम्हें कोई परेशानी नहीं होगी। बरदाश्तके बाहर होने लगी। खाने-पीनेमें कुछ भी गंगामैयाने भी उनके इस आदेशकी सम्पुष्टि कर दी और रुचिकर नहीं लगता था। हमलोगोंने सोचा गर्मीका असर दोनों मुड़कर मन्दिरकी ओर जाने लगे। उसके बाद उसने हो गया है; क्योंकि गर्मी काफी पड रही थी और मौसम मुझे उन दोनों देवोंका दर्शन करानेके लिये अपने ठण्डा होनेकी कोई उम्मीद नहीं थी। कई तरहकी बिछावनसे उतरकर रेलिंगके पास आकर मच्छरदानी एलोपैथिक दवाइयाँ दी गयीं और कच्चे आमको आगमें खींचकर जगाना चाहा, परंतु उसी समय बगलके पकाकर उसका शर्बत भी कई दिनोंतक दिया गया। दरवाजेपर खाँसनेकी आवाज हुई और वे दोनों दृष्टिसे शरीरपर कच्चे आमको पकाकर उसका भर्ता मला गया, ओझल हो गये। परंतु कोई असर नहीं हुआ। मैंने अपने लड़केको कहा तत्पश्चात् सुबहसे ही मनोरमाके स्वास्थ्यमें सुधार हो गया और उसने कहा कि अब डॉक्टरको बुलानेकी कि डॉक्टरको बुलाकर ग्लूकोज चढ्वा दो, इससे ताकत आ जाना चाहिये। संयोगसे दूर देहातमें रहनेकी स्थितिमें कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान्ने मुझे ठीक कर दिया तत्काल डॉक्टर भी उपलब्ध नहीं हो सके। है और उसी दिनसे वह बिलकुल स्वस्थ हो गयी। दस-बारह दिन पूर्व एक रात वह दरवाजेपर सोयी बजरंगबली एवं गंगामैयाकी कृपासे इस तरह मनोरमाने हुई थी और मैं बरामदेपर चौकीपर मच्छरदानी लगाकर स्वास्थ्यलाभ किया, जिसका सुखद अनुभव यादकर मुझे सोया था। बरामदेपर करीब दो फीट ऊँचा रेलिंग देकर रोमांच हो जाया करता है और आँखोंसे आँसू गिरने ग्रिल लगा दिया गया है, जिससे कि कोई वस्तु रखनेपर लगते हैं। श्रीबजरंगबली और गंगामैयाकी मेरे परिवारके सुरक्षित रह सके। मैं गहरी निद्रामें सोया था। अचानक सदस्योंपर इस तरहकी कृपादृष्टिके लिये मुझे काफी किसीके द्वारा मच्छरदानीको खींचा जाना मैंने महसूस खुशीका अनुभव हो रहा है। इसके साथ ही मेरा किया, जिससे मेरी नींद टूट गयी। मैंने देखा कि मनोरमा श्रीबजरंगबली एवं गंगामैयाको शतश: नमन है कि मच्छरदानी खींच रही है, जिसे कि ग्रिलकी खाली मैया! जब कभी मेरे परिवारके सदस्य किंकर्तव्यविमृढ जगहसे हाथ बढाकर वह खींचनेका प्रयास कर रही थी। हो जायँ या कदम डगमगा रहे हों तो सदुदृष्टि प्रदानकर मैंने मच्छरदानीसे बाहर निकलकर गेट खोला और पूछा सन्मार्गपर चलनेके लिये प्रेरित करते रहनेकी कृपा करती क्मि।क्रियाह्मक क्रै।डेcord Server https://dsc.gg/dhaर्क्कोa-एम्फ्रुक्क क्रै।डेcord Server https://dsc.gg/dhaर्क्कोa-एम्फ्रुक्क क्रै।डेcord Server https://dsc.gg/dhaर्क्कोa-एम्फ्रुक्क क्रि।डेcord Server https://dsc.gg/dhaर्के

पढो, समझो और करो संख्या ३ ] पढ़ो, समझो और करो (१) देख तो नहीं रहा है। वह तुरंत घर आ गया, किसीने गंगाजीके अपमानसे गोहत्याका पाप उसे यह कुकृत्य करते देखा तो नहीं, पर जब वह अपनी राजस्थानके सवाई माधोपुर जिलेके एक गाँवकी दुकानपर आकर बैठा तब उसके पास दस-पाँच व्यक्ति यह सत्य घटना कुछ वर्षों पूर्वकी है। हरिद्वारके एक और बैठे हुए थे, अचानक उसने देखा कि वही गाय पण्डाजी सवाई माधोपुर जिलेके गाँवोंमें गंगाजल लेकर उठकर बाजारमें आ गयी है। अपने पड़ोसीकी गाय होनेके जाते और लोगोंको प्रसादरूपमें थोड़ा-थोड़ा बाँटते। लोग कारण वह तुरंत उसे पहचान गया। वह विचार करने लगा कि अरे, यह गाय कैसे जीवित हो गयी! उसने इस उन्हें दक्षिणामें एक-एक, दो-दो रुपये अपने इच्छानुसार दे दिया करते थे, उसीसे उनकी आजीविका चलती थी। कौतूहलभरी घटनाको पासमें बैठे व्यक्तियोंको सुनाते हुए एक बार वे कुछ लोगोंको गंगाजल प्रसादमें दे रहे थे, कहा—' अरे भाइयो! यह देखो, बडे आश्चर्यकी बात है! यह गाय मर गयी थी, लेकिन फिर जिन्दा होकर कैसे उनमें एक नास्तिक-प्रकृतिका व्यक्ति भी था। पण्डाजीने उसे भी गंगाजल दिया, उसने सकुचाते हुए गंगाजल ले आ गयी?' यह स्नकर वहाँ बैठे सभी लोग बड़े आश्चर्यचिकत तो लिया, परंतु हाथ मुँहके पास ले जाकर चुपकेसे पीछे हुए। वे सभी लोग बड़े कौतूहलसे पूछने लगे—'यह कैसे पीठकी ओर फेंक दिया। उसके ऐसा करते जब पण्डाजीकी दृष्टि पड़ी तब उनकी आँखोंमें आँसू आ गये हुआ?' तब उसने सुबहकी घटनाका जिक्र किया और और वे तुरंत ही हरिद्वार वापस आ गये। इस घटनासे घटना सुनाते हुए बीचमें ही एक छोटा-सा पत्थरका टुकडा उन्हें इतना दु:ख हुआ कि वे गंगा-किनारे बैठकर रोने उठाकर उस गायके ऊपर फेंकते हुए कहा—'ऐसे ही मैंने लगे और कहने लगे—'हे गंगामैया! कलियुगमें व्यक्ति इसे मारा था।' अभी यह वाक्य उसने पूरा ही किया था तेरा अपमान करने लगे हैं, यह अपमान मुझसे सहन नहीं कि वह गाय सबके सामने देखते-देखते ही बीच बाजारमें मर गयी। तुरंत ही यह चर्चा पूरे गाँवमें बिजलीकी तरह होता। अतः अब मैं गंगाजलको आजीविकाका साधन नहीं बनाऊँगा, चाहे मुझे भूखा ही क्यों न मरना पड़े। फैल गयी; गाँववालोंने और जातिवालोंने कहा कि गोहत्या आजीविकाका दूसरा धन्धा भी मुझसे होता नहीं। अब भयंकर पाप है। शास्त्रविहित प्रायश्चित्त करो, गंगा-स्नान क्या करूँ ?' इस प्रकार अत्यधिक चिन्तित होकर रोते-करो, कुछ ब्राह्मण-भोजन कराओ और भागवत-कथा रोते रातमें घर आकर सो गये। उसी रात स्वप्नमें उन्होंने आदिका अनुष्ठान करो, अन्यथा जातिसे बहिष्कृत रहोगे। देखा कि गंगामैया आयीं और बोलीं—'बेटा, रोते क्यों वह तुरंत चल दिया और हरिद्वार आया। पण्डाजी तो गंगा हो? जिसने मेरा अपमान किया है, वही व्यक्ति तेरे मैयाके स्वप्नके अनुसार स्टेशनपर इन्तजार ही कर रहे थे। चरणोंमें आकर रोयेगा, दो दिन धैर्य रख।' जब वह गो-हत्यारा पण्डाजीका चरण पकड़कर रोने पण्डाजीकी निद्रा भंग हुई तो वे प्रसन्न मुद्रामें थे। अब लगा। पण्डाजी भी पहचान गये कि यह वही गंगाजलका वे बडी आतुरतासे अगले दो दिनोंकी प्रतीक्षा करने लगे। अपमान करनेवाला व्यक्ति है। उस व्यक्तिने रोते हुए पूरा उधर गंगाजलका अपमान करनेवाला वह नास्तिक विवरण सुना दिया कि मैंने गंगाजलका अपमान किया, व्यक्ति शौचके लिये गाँवसे बाहर गया था। एक गाय जिससे मेरे द्वारा कल गोहत्या हो गयी है, अब अपने स्वभाववश वहाँ पहुँच गयी, उस दुष्टने एक छोटा-प्रायश्चित्तके लिये गंगा-स्नान करने आया हूँ। सा पत्थर उठाया और गायके सिरमें मार दिया, दैववश पण्डाजीने गंगा-तटपर आकर मन्त्रोंद्वारा गंगाजीका गाय तुरंत मर गयी। उसने इधर-उधर देखा कि यहाँ कोई पूजन कराया तथा उसके प्रायश्चित्तके लिये गंगामैयासे

भाग ९० प्रार्थना की। घर आकर उस व्यक्तिने भागवत-कथा, ब्राह्मण-नेत्ररोग—पिप्पलीके महीन चूर्णको सलाईसे आँखोंमें भोजन भी प्रायश्चित्तके लिये किया। इस प्रकार गंगामैयाका लगानेसे नेत्रोंके धुन्ध, रतौंधी एवं जाला आदि रोग नष्ट अपमान करनेके कारण उसे यह दण्ड प्राप्त हुआ। हो जाते हैं। शास्त्रोंमें गंगामैयाकी महिमाका अनन्त वर्णन है। खाँसी-पिप्पली, सोंठ और बहेड़ा समभाग इसका जल अत्यन्त निर्मल एवं पापनाशक है। यह लेकर शहदके साथ दिनमें तीन बार खानेपर पुरानी एवं साक्षात् ब्रह्मद्रव और भगवान् श्रीहरिका जलमय स्वरूप बार-बार होनेवाली खाँसीमें लाभ होता है। हिचकी, है, अतः प्राणिमात्रको भूलकर भी गंगामाताका अपमान संग्रहणी, जीर्ण अतिसार, उदर रोग, पाण्डु रोग, मंदाग्नि, नहीं करना चाहिये। - श्रीनारायण शर्मा मोटापा आदिमें पिप्पली जड़ बहुत लाभदायक है। —श्रीकृष्ण दीक्षित (२) पिप्पलीके घरेलू नुस्खे मो० नं० : ०८७९१५९५६२३ पिप्पलीकी जड़के गुण-पिप्पली भारतवर्षके (3) उष्ण प्रदेशोंमें उत्पन्न होती है। इसकी जड़ बहुत ही निष्काम सत्कर्मसे सद्गतिकी प्राप्ति लाभकारी है। गीतामें श्रीभगवान्का वचन है कि जन्मे हुएकी मृत्यु निश्चित है—'जातस्य हि धुवो मृत्युः।' अतः अवसाद, अनिद्रा, भूलनेकी बीमारी—जिन व्यक्तियोंको अवसाद, अनिद्रा तथा भूलनेकी बीमारी है, वह मृत्युका निवारण तो नहीं किया जा सकता, परंतु निष्काम व्यक्ति पिप्पलीकी जड़के चूर्णको ६ माहतक दो-दो चम्मच सत्कर्मोंसे मृत्युको मंगलमय बनाया जा सकता है और दुर्गतिके स्थानपर सद्गतिकी प्राप्ति हो सकती है। यद्यपि (सुबह एवं शाम) गुड़के साथ प्रयोग करें। एक माहमें ही उपर्युक्त बीमारीमें सकारात्मक परिणाम मिलने लगते हैं। जन्म और मृत्यु जीवके लिये दुसह पीड़ाके क्षण होते तीन माहमें ७५ प्रतिशत बीमारी कम हो जाती है। ६ माहमें हैं, परंतु जीवनमें किये गये परोपकार आदि सत्कर्म तथा व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। यह प्रयोग परीक्षित है। अन्तिम समयमें भगवन्नाम-श्रवणसे प्राणीको इस पीडासे श्वास रोगमें एक चम्मच शहदके साथ तीन बार मुक्ति मिल जाती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मैंने अपनी पत्नीके खानेपर लाभ होता है। अन्तिम समयमें देखा, जिसका विवरण इस प्रकार है— दुग्धवृद्धि—पिप्पली, सोंठ और हरड़के चूर्णको मेरी धर्मपत्नी स्व० श्रीमित प्रमिला कुमारी शुक्ला समान मात्रामें लेकर एक चम्मच चूर्ण गुड़ मिलाकर पेटकी बीमारीसे विगत अनेक वर्षोंसे लगातार बीमार उसमें थोड़ा घी मिलाकर दूधके साथ दो बार खिलानेसे चल रही थीं। उनका इलाज भारतवर्षके प्रमुख अस्पतालोंमें माताओंमें दूधकी वृद्धि होती है। हुआ। अन्तिम समयमें उनका इलाज बाह्य रोगीके रूपमें आधा शीशी—पिप्पली और वच चूर्ण समान एस०जी०पी०जी०आई० लखनऊमें चल रहा था। ईश्वरकी मात्रामें एक चम्मचकी मात्रामें नियमित रूपसे दो बार कृपासे वे जीवनके अन्तिम दिनोंतक अपने नित्य कर्म दूधके साथ खानेपर आधा शीशी दर्द मिट जाता है। और पूजा-पाठ आदि बिना किसी सहायताके करती गर्भधारण एवं मासिक पीड़ा—पिप्पली, सोंठ, रहीं। उनका सम्पूर्ण जीवन सात्त्विक, अध्यात्मनिष्ठ मिर्च और नागकेसर समभाग लेकर चूर्ण बनाकर घीमें निष्काम परसेवा और सदाचारसे सम्पन्न रहा। मिलाकर सुबह-शाम दूधके साथ सेवन करनेसे बाँझपन दिनांक ५ नवम्बर २०१४ ई० को मुझे अपने चचेरे समाप्त हो जाता है और स्त्री गर्भधारण कर सकती है। यह भाई, जो गम्भीर बीमारीसे ग्रसित होनेके कारण डॉ॰ योग मासिक धर्मके समय होनेवाले दर्दमें भी लाभप्रद है। राममनोहर लोहिया अस्पताल लखनऊमें भर्ती थे, उन्हें

संख्या ३] पढो, समझो और करो देखनेके लिये जाना पड़ा। धर्मपत्नीकी देखभालका कहा है कि-दायित्व मैं अपने पुत्रको सौंपकर उनके पास चला गया। जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥ इस मध्य मेरी धर्मपत्नीने दिनांक ६ नवम्बर २०१४ ई० बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥ को पूर्णमासीके दिन १०१ कन्याओंको भोजन कराने सादर सुमिरन जे नर करहीं बा। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥ तथा सुहागिन महिलाओंको सुहागिले खिलाने और हवन धर्मपत्नीकी इस असार-संसारसे विदाई वृद्धावस्थामें करानेकी व्यवस्था अपनी तरफसे पुत्रको आवश्यक धन अत्यधिक पीड़ादायक होना स्वाभाविक है, परंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मृत आत्माने जीवनका लक्ष्य प्राप्त देकर बीमारीकी हालतमें करायी। दुर्भाग्यवश मेरे चचेरे भाईका देहावसान दिनांक ६ नवम्बर २०१४ ई० को किया है। - प्रकाश बाब् शुक्ल पूर्णमासीके दिन प्रातः ही हो गया। अस्तु, धर्मपत्नीको गोमाताकी आत्मीयता अपना समस्त भोजन आदिका आयोजन न चाहते हुए भी स्थगित करना पड़ा। यह घटना सन् १९२० ई० के आस-पासकी है, उस दिनांक ८ नवम्बर २०१४ ई० की रात्रि धर्मपत्नीको समय मेरी उम्र यही कोई आठ-दस वर्षकी रही होगी। बड़ी बेचैनीसे व्यतीत हुई, परंतु दिनांक ९ नवम्बर २०१४ हमारे घरपर एक गाय थी, जिसका नाम था 'लीली'। मृत्युके दिन प्रात:-से ही वे स्वस्थ हो गयीं। लगभग ९ लीली डील-डौलमें तो बड़ी थी, पर थी बड़ी सीधी। हम बजे प्रात: पड़ोसमें रहनेवाली पूजा नामकी बेटी, जो कि बच्चे नि:संकोच उसके पास चले जाते। वह दोनों समय प्राय: उनकी अत्यधिक सेवा करती थी, उसे अपने पास सात-आठ सेर दुध देती थी। शायद हमारी पुरानी गायकी बुलाया एवं घरकी आया विनीताको याद किया। अपनी ही बिछया थी। दादीजी उसका सारा काम सँभालती थीं। पालित बेटी श्रीमती अर्चनाको पास बैठाया, जबकि लेकिन कुछ दिनों बाद, जब दादीजी अस्वस्थ रहने उनकी स्वयंकी दो बेटियाँ घरपर ही थीं। अपने बेटे लगीं तो गायके कामके लिये नौकर रखनेकी जरूरत रानुको पासमें बुलाया, बेटेके पूछनेपर आलू एवं दही हुई। इसलिये गायको बेच देना तय हुआ। दाम तय हुए इच्छानुसार खाया। इसके बाद 'राम राम' का स्पष्ट शायद ६० रुपये, जो उस समयके हिसाबसे अच्छी राशि रूपसे उच्चारण उनके द्वारा किया गया, सिरमें चोटीमें थी। गाय अच्छे सम्पन्न घरमें जा रही थी। विदाका समय आया तो दादीजी और हम बच्चे चिमटी लगवायी। लेट जानेपर गायत्री महामन्त्र, महामृत्युंजय मन्त्र सुनते हुए, तुलसीजी मिश्रित गंगोत्रीका गंगाजल बिसूर-बिसूरकर रोने लगे। मुझे आज भी याद है कि गायके बिना किसी बाधाके आरामसे पीती रहीं। मृत्युसे लगभग भी टपटप आँसू गिर रहे थे। वह बार-बार हम लोगोंकी १० मिनट पूर्व उन्होंने स्वयंकी अंगुलीमें पहनी हुई ओर देख रही थी, मानो यह कह रही हो कि हम लोग सोनेकी अँगूठी, पैरोंकी पायलोंको उतरवाया, रुपयोंसे इतने दिनोंतक साथ-साथ रहे; अब मुझे क्यों दूसरेके यहाँ भरा हुआ पर्स स्वयं अपने हाथसे देते हुए, महामृत्युंजय भेज रहे हो? यह देख ग्राहकको वापस भेज दिया गया मन्त्रकी यथार्थताको सिद्ध करते हुए पके हुए खरबूजेके और उसके लिये एक 'हाली' नौकर रख लिया गया। फलकी भाँति सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त हो गयीं। इस लीली हमारे घरमें ही बुड्डी होकर मरी। दाह-क्रिया विधिपूर्वक दृश्यको घर एवं पास-पड़ोसमें रहनेवाले अनेक लोगोंने की गयी। दो-तीन दिन सूतक-सा भी मनाया गया। इस घटनासे यह प्रमाणित होता है कि गाय कोई सामान्य पश् स्वयं अपनी आँखोंसे देखा। इससे आज भी कलियुगमें दान-पुण्य एवं परसेवा आदिकी यथार्थता सिद्ध होती है। नहीं, बल्कि गोमातामें भी ठीक वही आत्मीयभाव होता महात्मा तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें सच ही है, जो मनुष्योंमें।—रामेश्वर टांटिया

मनन करने योग्य

## गंगाजल अमृत है

कि तुम ब्राह्मणोंसहित मेरे यज्ञकी रक्षा करो। प्राचीनकालकी बात है, भरद्वाज नामसे विख्यात

एक बड़े धर्मात्मा मुनि थे। उनकी पत्नीका नाम पैठानसी था। वह पातिव्रत धर्मका पालन करती हुई पतिके साथ गौतमीके तटपर निवास करती थी। एक बार मुनिने अग्नि

और सोम देवताओंके लिये तथा इन्द्र और अग्नि देवताओंके लिये पुरोडाश (खीर) बनाया। पुरोडाश जब

पक रहा था, तब धुएँसे एक पुरुष प्रकट हुआ, जो तीनों

लोकोंको भयभीत करनेवाला था। उसने पुरोडाश खा

लिया। यह देखकर मुनिने क्रोधपूर्वक पूछा—'तू कौन है, जो मेरा यज्ञ नष्ट कर रहा है?' ऋषिकी बात सुनकर राक्षसने उत्तर दिया—'मेरा नाम हव्यघ्न (यज्ञघ्न) है। में सन्ध्याका पुत्र हूँ। प्राचीनबर्हिष्का ज्येष्ठ पुत्र में ही

हूँ। ब्रह्माजीने मुझे वरदान दिया है कि तुम सुखपूर्वक

यज्ञोंका भक्षण करो। मेरा छोटा भाई कलि भी बलवान् और अत्यन्त भीषण है। मैं काला, मेरे पिता काले, मेरी

माँ काली तथा मेरा छोटा भाई भी काला ही है। मैं कृतान्त बनकर यज्ञका नाश और यूपका छेदन करूँगा।'

भरद्वाजने कहा—तुम मेरे यज्ञकी रक्षा करो; क्योंकि यह प्रिय एवं सनातन धर्म है। मैं जानता हूँ कि तुम यज्ञका नाश करनेवाले हो, तो भी मेरा अनुरोध है

यज्ञध्नने कहा — भरद्वाज! तुम संक्षेपसे मेरी बात सुनो। पूर्वकालमें देवताओं और दानवोंके समीप ब्रह्माजीने मुझे शाप दिया। उस समय मैंने लोकपितामह ब्रह्माजीको

नहीं है।' ब्रह्मन्! जब आप ऐसा करेंगे, तब आपकी

हो। अतः जिस उपायसे यज्ञकी रक्षा हो, वह बताओ।

प्रार्थना करके प्रसन्न किया। तब उन्होंने कहा—'जब कोई श्रेष्ठ मृनि तुम्हारे ऊपर अमृतका छींटा दे, तब तुम शापसे मुक्त हो जाओगे। इसके सिवा और कोई उपाय

जो-जो इच्छा होगी, वह सब पूर्ण होगी। यह बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती। भरद्वाजने फिर कहा—महामते! तुम मेरे सखा

में उसे अवश्य करूँगा। देवताओं और दैत्योंने एकत्रित होकर कभी क्षीरसमुद्रका मन्थन किया था। उस समय बड़े कष्टसे उन्हें अमृत मिला था। वही अमृत मुझे कैसे सुलभ हो सकता है ? यदि तुम प्रेमवश प्रसन्न हो तो जो

सुलभ वस्तु हो, वही माँगो। ऋषिकी यह बात सुनकर राक्षसने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'गौतमी गंगाका जल अमृत है। सुवर्ण अमृत कहलाता है। गायका घी भी अमृत है और सोमको भी

वस्तुओंसे ही अभिषेक करो। सबसे उत्कृष्ट एवं दिव्य अमृत है—गौतमी गंगाका जल।' यह सुनकर भरद्वाजमुनिको बड़ा सन्तोष हुआ।

उन्होंने बड़े आदरके साथ गंगाका अमृतमय जल हाथमें

अमृत ही माना जाता है \*। इन सबके द्वारा मेरा अभिषेक

करो। अथवा गंगाका जल, घी और सुवर्ण—इन तीनों

लिया और उससे राक्षसका अभिषेक किया। इससे वह महाबली राक्षस शुक्ल वर्णका होकर प्रकट हुआ। जो पहले काला था, वह क्षणभरमें गोरा हो गया। प्रतापी भरद्वाजने सम्पूर्ण यज्ञ समाप्त करके ऋत्विजोंको विदा

किया। इसके बाद राक्षसने पुनः भरद्वाजसे आज्ञा ली और चला गया। [ब्रह्मप्राण]

LOVE BY Avinash/Sha

#### Dear Contributors,

Kalyana-Kalpataru, the English monthly Magazine published by Gita Press, Gorakhpur has proposed to publish Sewā-Tyāga Number as their annual number in October 2016.

The tentative list of suggested topics is given below. The contributors are requested to choose any topic from the list or may select any related issue for their write up. The write up should be concise and expression simple and lucid. The write up may please be sent to reach us by 30th June, 2016.

#### Sewā-Tyāga Number

1. Real meaning of Sewā 2. Sewā—When, Where and How 3. Kinds of Sewā—Of guests, Parents, Guru, Elders, Needy Persons, Society, Country, Cows and Creatures 4. Lifestyle of person dedicated to Sewā 5. Sewā and sympathy 6. Sewā and Gift / Dāna 7. Sewā of needy humans 8. Sewā of cows and all living creatures 9. Sewā and surrender to God 10. Attitude of Sewā in dealing with relatives 11. Sewā—friendly attitude to all 12. Niskāma-Sewā—service without expectations 13. Finding opportunities for Sewā 14. Developing Institutions for selfless Sewā 15. Sewā of Saints 16. Social service and Sewā 17. Sewā and God-realization 18. Sewā cardinal principle of Hinduism 19. Element of Sewā in other religious traditions—(i) Buddhism, (ii) Jainism, (iii) Sikhism, (iv) Christianity, (v) Islam and others 20. Inspiring illustrations of Sewā—(i) In Vedic literature, (ii) Mahābhārata, (iii) Rāmāyana, (iv) Purānas and (v) Folklores 21. Real meaning of Tyāga 22. Tyāga of possessions or possessiveness 23. Tyāga with a view to gain social status 24. Surrender of ego-real Tyāga 25. Tyāga of material world for spiritual upliftment 26. Tyāga and God-realization 27. Tyāga of harsh words for happiness around 28. Tyāga of lust and cardinal desires 29. Tyāga of self comfort for helping others 30. Tyāga of hoardings at a time of calamities 31. Tyaga of laziness for good health and prosperity 32. Tyāga without pride 33. Is real Tyāga possible in human life? 34. Illustrious examples of Tyāga—(i) In Vedic literature, (ii) Rāmāyana, (iii) Mahābhārata, (iv) Purānas, (v) Indian history, (vi) Traditional folklores, (vii) Western illustrations.

#### 'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

- १ प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,
- २-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,
- ३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन–कार्यालय के लिये),

(गोबिन्दभवन–कार्यालय के लिये) राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर, ५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और

जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन–कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं। केशोराम अग्रवाल,

(गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

#### गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सुचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी वैशाख कृष्णपक्ष तृतीया (२५ अप्रैल)-से सत्संगका आयोजन किया गया है। इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्न-पाठका कार्यक्रम रहता है। गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये। गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए

सत्संग–कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन–सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है। महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट

सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको मतदाता पहचान-पत्र अथवा फोटोयुक्त अन्य पहचान-पत्र रखना आवश्यक है।

व्यवस्थापक—गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम—२४९३०४



रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

# चैत्र नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस'के विभिन्न संस्करण

| कोड  | पुस्तक-नाम                               | मूल्य ₹ | कोड  | पुस्तक-नाम                                 | मूल्य ₹ |  |  |  |
|------|--|---------|------|--|---------|--|--|--|
| 1389 | श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार (वि०सं०)        | €00     | 82   | <b>श्रीरामचरितमानस</b> —मझला साइज, सटीक,   |         |  |  |  |
| 80   | 🕠 बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)        | 400     |      | [बँगला, गुजराती भी]                        | १२०     |  |  |  |
| 1095 | 🥠 ग्रन्थाकार-सटीक (वि॰सं०) गुजरातीमें भी | 300     | 1318 | 🥠 रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित ( मझला भी ) | 300     |  |  |  |
| 81   | 🕠 ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप,    |         | 83   | 🕠 मूलपाठ,ग्रन्थाकार                        |         |  |  |  |
|      | [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, नेपाली            |         |      | [गुजराती, ओड़िआ भी]                        | १२०     |  |  |  |
|      | गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]             | २४०     | 84   | 🕠 मूल, मझला साइज [गुजराती भी]              | 90      |  |  |  |
| 1402 | ,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य संस्करण)    | १९०     | 85   | 🕠 मूल, गुटका [गुजराती भी]                  | ४५      |  |  |  |
| 1563 | 🕠 मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)           | १४०     | 1544 | ,, मूल गुटका (विशिष्ट संस्करण)             | 40      |  |  |  |
| 1436 | 🕠 मूलपाठ, बृहदाकार                       | २५०     | 1349 | सुन्दरकाण्ड सटीक, मोटा टाइप, दो रंगोंमें   | २५      |  |  |  |
|      |  |         |      |  |         |  |  |  |

#### नित्य पाठके लिये 'श्रीदुर्गासप्तशती'के विभिन्न संस्करण

| - 1 |      |   |         |      |   |         |  |
|-----|------|---|---------|------|---|---------|--|
|     | कोड  | पुस्तक-नाम  | मूल्य ₹ | कोड  | पुस्तक-नाम                              | मूल्य ₹ |  |
|     | 1567 | <b>श्रीदुर्गासप्तशती</b> —मूल, मोटा टाइप (बेड़िआ) | ४५      | 118  | श्रीदुर्गासप्तशती—सानुवाद, सामान्य टाइप |         |  |
|     | 876  | 🕠 मूल, गुटका                                      | १५      |      | (गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी)              | ३०      |  |
|     | 1346 | 🕠 सानुवाद, मोटा टाइप                              | ३५      | 866  | <b>,,</b> केवल हिन्दी                   | २०      |  |
|     | 1281 | " सानुवाद (राजसंस्करण)                            | ५०      | 1161 | ,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द                 | 40      |  |
| Ī   | 489  | •• स्रजिल्द गजरातीमें भी                          | ΧĿ      | 1774 | देवीस्तोत्रात्मकर                       | 31.     |  |

#### 9 ः सजिल्द, गुजरातीमें भी ४५ | 1774 | देवीस्तोत्ररत्नाकर इ पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें—अब छपकर तैयार

शिवोपासनाङ्क (कोड 586)—इस विशेषाङ्कमें भगवान् शिवसे सम्बन्धित तात्त्विक निबन्धोंके साथ शास्त्रोंमें वर्णित शिवके विविध स्वरूप, शिव–उपासनाकी मुख्य विधाएँ, पञ्चमूर्ति, दक्षिणामूर्ति, ज्योतिर्लिङ्ग, नर्मदेश्वर, नटराज, हरिहर आदि विभिन्न स्वरूपोंके विवेचन, आर्ष ग्रन्थोंके आधारपर शिव–साधनाकी पद्धित, भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें अवस्थित शिवमन्दिर तथा शैव तीर्थोंका विस्तृत परिचय और विवरण आदि है। मृल्य ₹१३०

महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण (कोड 38)—हरिवंशपुराण वेदार्थ-प्रकाशक महाभारत ग्रन्थका अन्तिम पर्व है। पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे हरिवंशपुराणके श्रवणकी परम्परा भारतवर्षमें चिरकालसे प्रचलित है। अनन्त भावुक धर्मपरायण लोग इसके श्रवणसे पुत्र-प्राप्तिका लाभ प्राप्त कर चुके हैं। भगवद्धिक्त तथा प्रेरणादायी कथानकोंकी दृष्टिसे भी इसका बड़ा महत्त्व है। मूल्य ₹३५०

पाठकोंसे नम्न निवेदन—वी० पी० पी०से भेजे गये अङ्कोंका भुगतान प्राप्त करनेमें समय लगनेके कारण उनके भुगतानकी प्रतीक्षा किये बिना फरवरी एवं मार्चके अङ्क सभी ग्राहकोंको प्रेषित किये जा रहे हैं, जिससे पाठकोंको मासिक अङ्क समयसे प्राप्त हो जाय।

व्यवस्थापक—'कल्याण कार्यालय'—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५